१. प्रथम अध्याय : भारतीय संगीत का इतिहास

१ भारतीय संगीत का इतिहास

१.१ संगीत

गीतं वाद्यं तथा नृत्य त्रयं संगीतमुच्यते ||

__ संगीत-रत्नाकर

जिसमें गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओंका समावेश होता है; उसे संगीत कहते हैं | इन तीनों कलाओं का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व भी है तथा एक दुसरे के आधीन (पूरक) भी है |

१.२ संगीत का उद्भव

१.२.१ नाद

भौतिक शास्त्र के विद्वानों ने बताया है की ध्वनी दो प्रकार की होती है | एक संगीत उपयोगी तथा दूसरी कोलाहल, शोरगुल अथवा राव ध्वनी। संगीत उपयोगी ध्वनी को नाद कहा गया है | तथा दुसरे प्रकार की जो ध्वनी है उसे शोरगुल या राव कहा गया है। ध्वनी, कोई भी प्रकार की हो उसके उत्पन्न होने का कारण दो चीज-वस्तुओं के बीच में होने वाला घर्षण [रगड़], टकराव अथवा आघात है | जब यह घर्षण होता है तब उसमे से जो आवाज़ या ध्वनी उत्पन्न होती है, तब इस ध्वनी की कम्पन्न संख्या नियमित तथा स्थिर [सतत, लगातार] होती रहती है; तब वह नाद कहलाती है | तथा जब कोई ध्वनी की कम्पन्न संख्या अनियमित होती है, क्षणिक होती है तब वह कर्णकटु ध्वनी, शोरगुल या राव कहलाती है |

नाद के दो प्रकार [भेद] माने गए है। १] अनाहत नाद २] आहत नाद।

१.२.२ अनाहत नाद :- अनाहत नाद उत्पन्न होने का कोई कारण होता नहीं है,यह नाद बिना किसी आघात से उत्पन्न होता है, जिसे आम लोग सुन नहीं सकते | इस नाद की उपासना, [साधना, अभ्यास] ऋषी-मुनियों, योगियों द्वारा की जाती है | इस नाद को मुक्तिदायक माना गया है | जिसे स्वयंभू नाद भी कहते हैं |

१.२.३ आहत नाद :- यह नाद किसी दो वस्तुओं के एक दुसरे के साथ टकराव या घर्षण [रगड़], या आघात से उत्पन्न होता है | जिस ध्वनी की कम्पन्न संख्या नियमित हो स्थिर हो ऐसी कर्ण-प्रिय ध्वनी संगीत उपयोगी नाद कहलाती है | नियमित तथा सतत कम्पन्न वाली ध्वनी का वैशिष्ट्य यह है की यह रंजकता पैदा करती है |

भौतिक दृष्टि से नियमित तथा सतत कम्पन वाली ध्वनी से ही संगीत का उद्भव होता है | भौतिक शास्त्र विश्लेषण के आधार पर हमें यह दर्शाता है की नाद के आवश्यक तत्व क्या है | भौतिक शास्त्र हमें नाद के लक्षण बतलाता है, न की संगीत का उद्भव |

१.२.४ संगीत के उद्भव के विषय पर कई आधुनिक विद्वानों के विचार :- डार्विन के मतानुसार संगीत की उत्पत्ती पशु मैथुन के समय कुंजन या मधुर ध्वनी होती थी तब मनुष्य ने जब इस प्रकार की ध्वनी का अनुकरण किया तब संगीत का उद्भव हुआ |

कार्ल स्टम्फ की धारणा अनुसार जब मनुष्य ने ध्वनी संकेत द्वारा ऊँची-नीची आवाज़ में जब एक दूसरे को संकेत देना शुरू किया तब इसमे से भाषा की उत्पत्ती हुई | इनके मत से भाषा ही संगीत का पूर्व रूप है |

कुछ विद्वानों के मतानुसार भावव्यंजन ध्वनी द्वारा संगीत का उद्भव हुआ। कुत्ते-बिल्ली जैसे प्राणी जब भूखे होते हैं तब वे एक विशेष प्रकार की

आवाज़ [काकू] निकालकर अपनी भूख को व्यक्त करते हैं | वैसे ही किसी पशु को इजा होने पर वह कुछ विशिष्ट [स्वर काकू द्वारा] आवाज़ द्वारा अपना दुख: व्यक्त करता है |

अर्थात भाषा और संगीत का उद्भव ध्वनी ही है |

भाव जब ध्वनि प्रधान होता है तब वह भावयुक्त स्थिरता तथा नियमितता धारण करके स्वर मे निर्मित हो जाता है | जब शब्द या भाषा का निर्माण नहीं हुआ था तब मनुष्य अपने भावों को अलग-अलग ध्वनी संकेत द्वारा प्रगट करता था | इसी ध्वनी-भंगी या ध्वनी-विकार का प्राचीन स्वरूप या नाम “स्तोभ” [interjactionalcry] था | शब्दों के अभाव से पहले “ल, ल, य, ल, हुम, अहा, हो, हाँ, हाँ, हो, हाऊ, ओह, हे” इत्यादि स्तोभों में मनुष्य का गान जगत में प्रतिध्वनित हुआ |

जैसे :-

सा	-	-	-	सा	-	सा	-	-	-	सा	-	सा	-	-	-	सा	-
हा	ऽ	ऽ	ऽ	उ	ऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	उ	ऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	उ	ऽ

सां	-	-	नि	-	ध	-	-	प	-	सां	-	-	नि	-	ध	-	-	प	-
आ	ऽ	ऽ	ज्य	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ह	म	आ	ऽ	ऽ	ज्य	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ह	म

उपरोक्त गान मे हाउ हाउ हाउ “स्तोभ” है | आज भी हमें कई गीतों में, श्रम गीतों में, लोरियों में हैसो हैसो, हे, ओहो, अररर, लललल, हूं हूं, हेत, लला लला इत्यादि “स्तोभ” देखने सुनने कों मिलते हैं जो भाव व्यंजक हैं|

मनुष्य जब भाषा का भी निर्माण न कर पाया था तब भी उसके हृदय के भाव संगीत में गूंज उठते थे | संगीत तथा भाव यह समकालीन है |

भारतीय संगीत के आदि प्रेरक

पीछे हम देख चुके हैं की संगीत का उद्भव मानव भाव के साथ हुआ | तब संगीत का प्रादुर्भाव कला के रूप में नहीं हुआ था | परंतु आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़कर संगीत ने किस प्रकार एक सुव्यवस्थित स्वरों का रूप धारण किया तथा कैसे प्रबंन्ध, जाति गायन, रागरागिनी गायन पद्धति इत्यादि से कैसे आगे बढ़कर कैसे थाट राग पद्धति में रागों का गायन होने लगा; भारतीय संगीत के इतिहास के अंतर्गत इन तथ्यों को खोजने का प्रयास करेंगे |

इतिहास शब्द इति + ह + आस से बना है |

इति = ऐसा

ह = निश्चयपूर्वक

आस = था

इतिहास का मतलब है “निश्चयपूर्वक ऐसा था” | इतिहास के अंतर्गत घटनाओं के क्रम के साथ-साथ परंपरागत चली आ रही बातों का भी समावेश होता है |

जहाँ तक संगीत के जन्म का सवाल है मनुष्य की श्रुष्टि के प्रथम दिन से ही हम संगीत के अस्थित्व को मान सकते हैं | हां यह अवश्य है की संगीत का विकासक्रम प्राचीनकाल से चल कर वर्तमान स्वरूप में क्रमश: विकसित रूप में बदल गया है |

धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्मा जी द्वारा हुई | आगे चल कर ब्रह्मा जी ने शिव को, शिव ने सरस्वती को, सरस्वती ने नारदमुनि को, तथा नारदमुनी ने गांधर्व, किन्नर और अप्सराओं को संगीत की शिक्षा प्रदान की तथा नारद द्वारा ही सांगीत कला भूलोक पर आई | नारद जी को संगीत शास्त्र में गन्धर्वों में स्मरणीय किया गया है | संगीत कला को देवी-देवता से जोड़ने के पीछे की एक यह भावना है की संगीतकला दैवी प्रेरणा से ही प्रादुर्भूत हुई है | हमारे ऋषि, मुनियों के कथन के अनुसार शंकर के ड़मरू से वर्ण और स्वर दोनों उत्पन्न हुए हैं; ऐसा उनका मानना है | शंकर की शक्ति पार्वती, दुर्गा, इत्यादि भी संगीत की प्रेरक मानी गई हैं |

ब्रह्मा, सरस्वती यह संगीत के आदि प्रेरक के रूप में स्मरणीय हैं | ब्रम्हा शब्द बृह धातु से बना है जिसका अर्थ है आत्मविस्तार, ध्वनि होना| इस प्रकार सरस + वती शब्द सृ धातु से बना है जिसका अर्थ है “सरकना, गतिशील होना, चलायमान होना” इत्यादि | सरस्वती ब्रह्मा की ही शक्ति है |

केवल भारत में ही देवी-देवताओं को संगीत का आदि प्रेरक माना है ऐसा नहीं है; सारे जगत ने उनके अपने-अपने ईश्वर को संगीत का प्रेरक माना है |

संगीत को यूनानी भाषा में “मौसिकी, फ्रांसीसी में मुसीक, जर्मन में मूसिक, पोर्तुगी और लैटिन में मुसिका, अँग्रेजी में म्यूजिक, इब्रानी, फारसी तथा अरबी में मोसीकी कहा गया है | उपरोक्त सभी शब्दों का उद्भव यूनानी भाषा के “म्यूज” शब्द से हुआ है | यूनानी परंपरा में म्यूज को संगीत तथा काव्य की देवी मानी गई है | अर्थात कहने का तात्पर्य यह है की संगीत कला स्वर्गीय (नैसर्गिक) है | यह स्वर्ग से चलकर भूलोक पर उतरी है |

भारत में संगीत कला को अपने जीवन में अपनाने वाले लोगों को गांधर्व कहा गया है | जिनकी विद्या गांधर्व वेद के नाम से जानी जाती थी तथा कला को गांधर्व के नाम से पहचानते थे | गांधर्व कला में गीत सबसे प्रधान था | पहले गान था वाद्य बाद में आए | संगीत शब्द का अर्थ; सं + गीत = मतलब गीत के साथ | गान के साथ बाद में वाद्य तथा फिर नृत्य जुड़ते गए | मूलतः संगीत शब्द गान के अर्थ में ही सभी आर्य भाषाओं में मिलता है | अन्य भाषाओं में देखा जाए तो ऐल्गोसैक्सन में ‘सिंगन’ (singan), डच में स्तिंगन (Tsingen), अरबी में गना शब्द है जो गाने से पूर्णत: मिलता है | आइसलैंड में सिंग (Singia), डैनिश में सिंग (Synge) इत्यादि देखनेको मिलते है |

उपरोक्त सब “संगै” या “संगा” के रूपान्तर है | जिससे यह स्पष्ट होता है की संगीत या संगान पहले गीत या गान के रूप मे प्रकट हुआ |[१]

कुछ ग्रंथकारों का एक मत यह भी है की नारदजी की घोर तपश्चर्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हें संगीत कला प्रदान की | एक मतानुसार शिवजी ने पार्वती जी की शयन मुद्रा को देखकर, अनेक अंग-प्रत्यांगों के आधार पर ‘रुद्रवीणा’ बनाकर अपने पाँच मुखों से क्रमश: पूर्व मुख से - भैरव, पश्चिम मुख से - हिंडोल, उत्तर मुख से - मेघ, दक्षिण

मुख से - दीपक तथा आकाशोन्मुख से श्री राग प्रगट हुए तत्पश्चात पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई |

अरब के एक विद्वान 'ओलासीनिज़्म ने अपनी पुस्तक 'विश्व का संगीत' मे संगीत की जन्मदात्री बुलबुल को बताया है, उन्होंने यह कहा है की मानव ने संगीत को सर्व प्रथम बुलबुल से पाया |

पंडित दामोदर जी यह स्वीकृत करते हैं की संगीत की उत्पत्ति पक्षियों के कंठ के विभिन्न स्वरों द्वारा हुई | मोर से षडज, चातक से ऋषभ, बकरे से गांधार, कौवे से मध्यम, कोयल से पंचम तथा मेंढक से धैवत और हाथी से निषाद स्वरों की उत्पत्ति हुई है |

विख्यात संगीतज्ञ मि॰ जी॰ एच॰ रानडे अपनी पुस्तक 'हिंदुस्तानी म्यूजिक' में पक्षिगणों से संगीत की उत्पत्ति बताते हैं |

विख्यात संगीतज्ञ रिन्सोबोल्स ने अपनी पुस्तक 'संगीत के रेखा चित्र' मे जल-ध्वनि से संगीत की उत्पत्ति बताई है |

सुप्रसिध्द संगीतज्ञ काहीमोलामो ने अपनी पुस्तक 'संगीत के जन्म और विकास की कहानी' मे संगीत के जन्म का उद्गम 'नारी सौन्दर्य' बताया है |

सुप्रसिध्द इतिहासकार बंटोंडल ने अपनी पुस्तक 'द यूनिवर्सल म्यूजिक' मे ईसा मसीह को संगीत का जन्म दाता माना है | एक बार ईसा मसीह पथ पर चलते-चलते थक गये तब वे एक पेड़ की शीतल छाया में विश्राम करने लगे | विश्राम करते-करते उनकी आँख लग गई | जब वह सोकर उठे तो उन्हें एक मधुर स्वर सुनाई दिया जो बहुत ही मीठा था | ऐसा मधुर स्वर उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था | वह चारों

ओर ढूंढने लगे की यह मधुर स्वर कहां से आ रहे हैं | देखने पर यह पता चला की हरे-हरे पत्तों तथा रंगीन पुष्पों के बीच से एक खूबसूरत चिड़ियाँ स्वर आलाप कर रही थी | ईसा मसीह इस चिड़िया के स्वरों का अनुकरण करने लगे | जिस पेड़ के नीचे ईसा मसीह बैठे थे उस पेड़ का नाम 'एलकाजा' था जिसे बादमे संगीत का 'कल्पवृक्ष' मानलिया गया | और जिस चिड़ियाँ ने मधुर स्वर छेड़े थे उसे "लिंडा" नाम से जानी जाने लगी, जिसे संगीत की जन्मदात्री मानलिया गया | बाद में ईसा मसीह के स्वरों का विकास-क्रमशः होता चला गया, देश-विदेशों मे यह अलग-अलग प्रांतीय ढांचे में विभिन्न रूपों में ढ़ल गया |

जापान के विद्वान शिकोवा अपनी पुस्तक 'संगीत का नव इतिहास, में गीत का उद्गम स्थल स्वर्ग मानते हैं, पृथ्वी नहीं | इनके मतानुसार जब पृथ्वी पर पुरुष तथा नारी आई तब यह अपने साथ संगीत को भी ले आये अर्थात वे यह ईश्वरीय उपहार साथ ही लेकर आये थे | मतलब की संगीत का जन्म स्वर्ग से हुआ है |[२]

ओउम(ॐ) से संगीत का जन्म :- कुछ विद्वानों के मतानुसार संगीत की उत्पत्ति ओउम शब्द के गर्भ से मानी गयी है | अ,उ,म यह तीन अक्षरों से निर्मित होते हुये भी यह एक ही अक्षर (एकाक्षर) के समान है | ओउम शब्द को ईश्वर की शक्ति का ध्योतक माना गया है |

अ - ब्रह्मा की शक्ति का ध्योतक है |

उ - धारक या पालक , रक्षक विष्णु की शक्ति का ध्योतक है |

म - महेश की शक्ति का ध्योतक है |

ओउम को वेदों का बीज मन्त्र माना है | पुन: गांधर्व उपवेद सम्बन्ध शिक्षाओं में यह वर्णित है की 'षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद' यह सातों स्वर एक मात्र ओंकार के ही अंतर्विभाग है | ओंकार को मन्त्र-तंत्रों का चालक भी माना गया है | इसे प्रणव नाद भी कहा गया है | प्रणव(ॐ) ही सब मंत्रों का एक मात्र सेतु है | प्रणव से ही संगीत की उत्पत्ति हुई है |[३]

जाकोबिल ने अपनी पुस्तक 'द स्टेजेज़ ऑफ म्यूजिक' मे संगीत को अनादि माना है |

इतिहासकार ओलकसथोवर ने अपनी पुस्तक 'विश्व संगीत का एक अध्ययन' नामक पुस्तक में यह बताया है की ज्ञान ही संगीत के जन्म का कारण है | प्रथम आदिकाल में मानव जंगली अवस्था में था | तब इस अवस्था में कोई भी कला का ज्ञान उसे नहीं था | बाद मे उसके अंदर भाषा का ज्ञान हुआ होगा; तत्पश्चात् संगीत का ज्ञान हुआ होगा | यह शक्य नहीं हो सकता की ज्ञान शून्यता में संगीत का जन्म हुआ हो | अज्ञानता के अंधकार के युग से ज्ञान के प्रकाश की किरणों के साथ ही संगीत का जन्म हुआ होगा |[४]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार अर्लेन्टाइल ने भी इस मत को स्वीकृत करते हुए बताया है | सर्व प्रथम मानव ने समाज की स्थापना की होगी तत्पश्चात भाषा के ज्ञान के साथ संस्कृति का विकास हुआ होगा | कहने का तात्पर्य यह है की मानव ने जब रहन-सहन, खान-पान इत्यादि बाबतों में विकसित हो जाने पर जबकी उसकी बुद्धि में परिपक्वता आई होगी तब संगीत का जन्म हुआ होगा |

इतिहासकार जौन एलौ ने अपनी पुस्तक 'संगीत का बृहद इतिहास' में बतलाया है की भारत के संगीत का जन्म ईसा मसीहा से आठ से नौ हज़ार वर्ष पूर्व हो चुका था | भारत ने ही विश्व को संगीत का उपहार प्रदान किया |

भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई के कार्य पर नौ-दस हज़ार वर्ष पूर्व के शीला लेख तथा मूर्तियाँ प्राप्त हुई है | भारतीय संगीत का जन्म ईसा मसीहा से नौ हज़ार वर्ष पूर्व ही हो चुका था | ईसा मसीहा के काल में तो भारतीय संगीत का गौरव अद्वितीय था, उच्चता के दैदीप्यमान शिखर पर सुशोभित हो रहा था |[५]

१.३ अंधकार युग में संगीत

वैसे देखा जाय तो हमारी सभ्यता और संस्कृति बहुत प्राचीन हैं | हमारे देश का विकास क्रम हज़ारों वर्ष पूर्व से चला आ रहा है | कुछ ग्रंथकारों का मानना है की भारत का प्राचीन इतिहास ई. पू. ३५०० से लगभग प्रारम्भ होता है।इस काल को संगीत का अन्धकार युग भी कहते हैं | इस युग के कुछ पाषाण चिन्ह तथा कई मुर्तियाँ इत्यादि खोज करने वालों के हाथ लगे हैं |

इस काल को इतिहासकारों ने चार भागों में बाँटा है | [१] पूर्व पाषाण काल [२] उत्तर पाषाण काल [३] ताम्र काल [४] लौह काल

१.३.१ पूर्व पाषाण काल :- इस काल में मनुष्य बिल्कुल जंगली अवस्था में रहते थे | ये लोग गुफाओं में रहते थे तथा जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट भरते थे | यह लोग संगीत का प्रयोग शिकार करते वक्त, मछलियाँ पकड़ते वक्त, नारी को प्रसन्न करने के लिए इत्यादि समय पर करते थे | इन लोगों ने पत्थरों से औज़ार भी बनालिए थे |

पत्थर के तुकड़े से इन्हों ने मंजीरे जैसे आकार का वाद्य भी बना लिया था | जिसे 'अग्सा' कहते थे | यह लोग अग्नि का प्रयोग करना भी जानते थे, तथा पहेरवास में वृक्षों की पत्तियाँ तथा जनावारों की खाल का प्रयोग करते थे | इस युग में संगीत का कोई विकसित रूप देखने को नहीं मिलता, फिर भी इन्हें संगीत से लगाव जरूर था | भाषा का जन्म इस युग में नहीं हो पाया था | यह लोग विभिन्न स्वरों के द्वारा ही अपने आंतरिक हर्ष एवं विषाद की अभिव्यक्ति किया करते थे | इस काल में गाना स्वरों पर ही आधारित था | मतलब की 'हूँ हूँ हेवा हूँ हूँ हेवा' जैसी विचित्र प्रकार की सांगीतिक ध्वनि यह निकालते थे | इस काल के लोग वास्तव में भारत के ही निवासी थे |

१.३.२ उत्तर पाषाण काल :- पूर्व पाषाण काल के लोगों को दूसरी जाति के लोगों ने आकर पराजित कर दिया | यह लोग पूर्व पाषाण काल के लोगों से अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत थे | सामाजिक भावना का उदय भी इन लोगों में हो चुका था | इन लोगों के हथियार (पाषाण) बहुत तेज तथा चमकीले होते थे, धनुष्य बाण चलाने में तथा भाला फेक में यह माहिर थे| इन लोगों का संगीत का ज्ञान पूर्व पाषाण काल के लोगों से बहुत अधिक था | इस युग को सामूहिक संगीत का जन्म काल भी माना जाता है | महिला पुरुष दोनों ही संगीत का आनंद लेते थे | संगीत ने इन लोगों को सभ्यता की ओर झुकाया |

१.३.३ ताम्र काल :- ताम्र काल के लोगों की सभ्यता और संस्कृति बहुत ऊँची उत्कृष्ट थी | उत्तर पाषाण काल के लोगों को दूसरे लोगों ने आकर हरा दिया था | जिन्हें ताम्र काल के लोग कहते हैं | इस काल के लोग धातुओं का प्रयोग करना अच्छी तरह से जानते थे | यह लोग तांबे के हथियार बनाना जानते थे | इन लोगों को लेकर कुछ विद्वानों के मत है

की यह वही जाति के लोग हैं; जिनके वंशज मेसोपोटामिया के सुमेरियन तथा दक्षिण भारत के द्रविड़ लोग थे | यह लोग संगीत के बड़े प्रेमी थे | पाषाण काल के मुकाबले इस काल का संगीत श्रेष्ठ था | इस काल में लोगों को नृत्य का ज्ञान भी हो चुका था | नृत्य में महिलाएँ बड़ी माहिर थी |

कुछ विद्वानों का मानना है की भाषा का जन्म इस युग में ही हुवा है | मतलब की स्वरों के अंदर लोगों ने शब्द उतारना आरम्भ कर दिया था | वास्तव में इस युग का संगीत अब तक के युगों के संगीत से एक अलग प्रकार की नविन धारा का था | इस युग के लोगों ने सर्व प्रथम संगीत को ईश्वर आराधना का उपकरण बनाया | वे देवी देवताओं की पूज़ा-अर्चना संगीत द्वारा करते थे | इस युग में संगीत को धार्मिक रूप दिया गया | यह लोग संगीत को ईश्वर की देन मानते थे | इनका यह विश्वास था की संगीत के द्वारा हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं | संगीत क्षेत्र में इन लोगों का कोई विशेष अन्वेषण नहीं रहा; परंतु संगीत जगत को एक नविन दृष्टिकोण अवश्य दिया | संगीत की स्थिती इस युग में इतनी परिपक्व हो गई थी की आने वाले युग के लोगों ने भी इसका लाभ उठाया | आर्यों का संगीत भी इस युग के संगीत से काफी प्रभावित रहा |

सुप्रसिध्द इतिहासकार डास्को योलो अपनी पुस्तक "The History of Human Race" में बताया है की भारतीय संगीत की बुनियाद वास्तव में द्रविड़ो के संगीत पर आधारित है | संगीत के विकास में इन लोगों ने जितना योगदान दिया उतना अन्धकार युग के किसी भी वर्ग ने नहीं दिया | इसलिए अन्धकार युग में रहते हुए भी प्रकाश युग लाने के जबरदस्त स्रोत द्रविड़ को समझे जाते हैं | द्रविड़ कला प्रेमी थे |

१.३.४ लौह काल :- ताम्र युग के बाद जो दूसरी जाति भारत वर्ष में आई वह पामीर पर्वत की ओर से आई | यह लोग लौह के हथियारों का प्रयोग करने में प्रवीण थे | इस वजह से इस युग का नाम लौह काल पड़ा | इस युग में संगीत की इतनी प्रगति नहीं हुई की जीतनी द्रविड़ो के समय में हुई थी | इस युग के लोग विवाह उत्सव गा-बजाकर करते थे | कई त्योहारों में संगीत का प्रयोग जमके होता था | स्री-पुरुष दोनों ही त्योहारों में भाग लेते थे | इस युग में नारी तथा पुरुष दोनों ही नृत्य में भाग लेते थे । इस युग की नारियाँ भी द्रविड़ो की नारी के समान संगीत में उन्नतिशील तथा कुशाग्र थी |[६]

१.४ सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता और संगीत :- सन १९२४ में सिन्ध प्रदेश के लरकाना जिले में मोहनजोदड़ो नामक स्थान पर खुदाई में बहुत सी चीजें उपलब्ध हुई | इस खुदाई में बहुत सी ऐसी चीज प्राप्त हुई है, जिससे यह सिध्द होता है की सिंधु नदी की घाटी में जो अनार्य लोग बसे थे उन बसने वाले लोगों की सभ्यता बहुत उच्च कोटी की थी | खुदाई से यह पता चला है की किसी ज़माने में यहाँ एक बड़ा नगर था | यहाँ जीवन ज़रूरियात दैनिक चीज़ वस्तु, सोने और अन्य धातुओं के आभूषण, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, औजार इत्यादि भी मिले हैं | जो उत्कृष्ट सभ्यता का प्रमाण है | मोहंजोदड़ों एवं हड़प्पा की खुदाई ने यह साबित कर दिया है की विश्व में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति प्राचीन है और उसी तरह विश्व में भारतीय संगीत भी प्राचीन है | इस खुदाई में प्राचीनतम शिवजी की ताण्डव नृत्य करती हुई मूर्ति भी प्राप्त हुई है |[७]

पंजाब के मोण्टगोमरी जिले में हरप्पा और मोहंजोंदड़ो ये दोनों स्थान एक दुसरे से ४५० मिल दूर है; फिर भी खुदाई में दोनों स्थानों से निकले हुए भवनों और वस्तुओं में बहुत साम्यता है | इस वजह से कई

विद्वानों का मानना है की इन स्थानों का निर्माण एक ही साथ अथवा कुछ आगे पीछे हुआ होगा | ये स्थान सिंधु नदी की घाटी में स्थित होने के वजह से इसे सिंधु नदी की घाटी की सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है | विद्वानों के मतानुसार यह सभ्यता कम से कम पांच हज़ार वर्ष पुरानी है | खुदाई दरम्यान नृत्य की मुद्राओं में जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई है | इससे यह पता चलता है की | उस काल में संगीत उन्नत अवस्था में था |

सिन्ध घाटी की सभ्यता और कला सर्वोत्कृष्ट थी इसका प्रमाण खुदाई में प्राप्त संगीत सम्बन्धी सामाग्री जैसे की नर्तकियों की मूर्तियाँ, बांसुरी इत्यादि से पता चलता है की ५००० वर्ष पुर्व भारतीय संगीत में पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी | वीणा और विभिन्न प्रकार के ताल-वाध्यों का निर्माण भी हो चुका था |[८]

१.५ वैदिक काल :- वैदिक युग को भारतीय संस्कृति के इतिहास का प्राचीनतम युग माना गया है | यह युग प्राय: ई॰ पू॰ ६००० से ई॰ पू॰ ८००० तक का माने जाने की मान्यता है | वेदों की संख्या चार है | जिन्हे ऋगवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद कहते हैं; और जिसमें वेद मंत्रों का संग्रह है उसे संहिता कहा गया है | संहितायें चार मानी गई है | ऋक, यजु, साम, अथर्व | वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन से माना जाता है | आर्यों को संगीत से इतना प्रेम था की उन्होंने सामवेद को केवल गान के लिए बनाया था | साथ ही साथ और एक गांधर्व नामक वेद की रचना करली थी |

सामवेद प्रत्यक्ष गायन से ही संबंधित वेद था | इसमें ऋग्वेदों के सभी मंत्रों को तत्कालीन धुनों के सहारे गाया जाता रहा | इसके दो रूप थे | १] आर्चिक २] गान-ग्रन्थ अथवा गान संहिता | आर्चिक यह फ़क्त ऋग्वेद की ऋचाओं का संग्रह था । यही ऋचाएँ गान-ग्रन्थ में स्वर-सहित

दी जाती थी | आर्चिक में गीत के बोल थे, तथा गान ग्रन्थ में गीत के स्वर | यह गान-ग्रन्थ साम गीतों का फ़क्त ढाँचा या रूपरेखा दर्शाते थे | इन्हें गाने वाले कुशल गायक अपने अनुसार परिवर्तन, परिवर्धन करके गाते थे | गायकों की इस प्रकार की आंतरिक कल्पना से रचित रूप को 'ऊह' या 'ऊह्य' कहते थे | सामगान अवरोही क्रम में अधिक्तर पांच स्वरों का होता था | संगीत के स्वरों को 'यम' सज्ञा थी | सात स्वरों के नाम क्रमश: कृष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र तथा अतिस्वार्य थे |

ऋग्वेद वैदिक साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है | ऋग्वेद में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है | ऋग्वेद में गीत के लिए गिर, गातु, गाथा, गायत्र तथा गीति जैसे शब्द का प्रयोग किया हुवा पाया जाता था | यह सभी एक प्रकार के तत्कालीन गीत प्रकार थे और इनका आधार छंद और गायन शैली हुवा करती थी | गीत तथा उसकी धुन को 'साम' संज्ञा दी गई थी | यह सब धुनें उस समय जन संगीत के अंतर्गत तत्कालीन गाई जाने वाली धुनें थी | वैदिक मन्त्र इन्हीं के धुन पर गाये जाते थे | इस युग में संगीत लोकरंजन तथा ईश्वर-रंजन दोनों के लिए उपयुक्त था | यज्ञ-याग के अवसर पर मंत्रों के साधारण पाठ या पठन की अपेक्षा मंत्रों का गायन स्वरुप अधिक प्रभावशाली माना जाता था | यह गायन उस समय की तत्कालीन धुनों पर आधारित था | तथा इन्हीं के आधार पर वैदिक ऋचाएँ गाई जाती थी| स्वर तथा शब्द का यही गठबंधन 'साम' कहलाता था | साम की यह सब धुनें कुछ तत्कालीन गायकों से तथा कुछ धुनें जन-संगीत से ली गई थी |

वैदिक काल में ध्यौतान, वैखानस तथा शार्कर नामक गायकों के नाम पर ध्यौतान, वैखानस तथा शार्कर नामक 'साम' प्रसिध्द थे | इन गीतों के अतिरिक्त 'गाथा' नामक गायन की रचनाओं का भी गायन

किया जाता था | उस समय के लोकगीतों में उस समय की लोक जीवन की झाँकी का प्रस्तुतीकरण होता था | इनका गायन विवाह के समय वीणा के साथ किया जाता था |[१]

संगीत का मुख्य सम्बन्ध सामवेद से माना गया है, किन्तु ऋग्वेद में भी स्वर के उदात्त, अनुदात, और स्वरित इत्यादि भेद पाये जाते हैं | स्वर शब्द का अर्थ है आकारादि वर्ण जिनका उच्चारण बिना किसी दुसरे वर्ण की सहायता से होता है; मतलब की स्वतंत्र रूप से होता है | महाभाष्य १.२.२८ के अनुसार स्वर शब्द की व्याख्या "स्व+र; स्व=स्वयं; र=राजन्ते; 'स्वयं राजन्ते इति स्वरा' मतलब जो स्वर बिना किसी वर्ण की सहायता लिए स्वयं विद्यमान हो वह स्वर है |

१.५.१ वैदिक काल में स्वर या यम की संख्या :- वैदिक काल में ही स्वर या यम की संख्या सात निर्धारित हो चुकी थी | वैदिक काल में सात स्वरों की संज्ञाएँ इस प्रकार थी - कृष्ट,प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार्य | आगे चलकर स्वरों की संज्ञाएँ इस प्रकार हुई - षडज़, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद |

१.५.२ उदात्त, अनुदात, स्वरित :- वस्तुतः स्वर न हो कर स्वरों की एक विशेष प्रकार की उच्चारण विधि को उदात्त, अनुदात तथा स्वरित कहते हैं| पाणिनि की अष्टाध्यायी पर विद्वद्वर वामनजयादित्य विनिर्मित 'काशिकावृत्ति' (पृ.२४, चौखम्बा संस्कृत संस्करण) उदात्त, अनुदात और स्वरित पर काफी कुछ अच्छा दर्शाया गया है की जो स्वर ऊँचा उपलब्ध होता है उसकी उदात्त सज्ञा होती है | ऊँचा का मतलब यह नहीं है की वह सुनने मे बहुत ऊँचा लगे; उसका अर्थ है स्थानकृत उच्चत्व मतलब की तालु आदि समान स्थान में ऊर्ध्व भाग से जो स्वर निकलता है ऐसे स्वरों को उदात्त सज्ञा दी जाती थी | अनुदात स्वर उसे कहते थे जो समान

स्थान से नीचे के भाग से निकाला जाता था | स्वरित यह उदात्त और अनुदात के स्वरों का समाहार (सम्मिलित रूप) है । कहने का तात्पर्य यह है की उदात्त, अनुदात और स्वरित स्वर न होकर स्वरवर्णो के धर्म है, एक विशेष उच्चारण विधि है । जो, लोक और वेद दोनों में विद्यमान थे । संक्षेप में यह कहेंगे की समान स्थान में ऊँचे उच्चारण को उदात्त, नीचे उच्चारण को अनुदात और जिसमे उदात्त, अनुदात दोनों का संकलन, समाहार हो उसे स्वरित कहते थे । यह चाहे लौकिक हो या वैदिक-स्वर की एक विशेष उच्चारण विधि थी जो उदात्त, अनुदात और स्वरित कहलाती थी । विद्वानों के मतानुसार यह पहले निरुक्त इत्यादि ग्रन्थों में भी पाये जाते थे । ब्राम्हण ग्रन्थों में अभी तक विद्यमान है । धीरे-धीरे यह लौकिक भाषा से लोपित हो गये तथा फ़क्त वेद में देखने को मिलते हैं ।[१०]

सामगान में पहले केवल तीन से चार स्वर थे धीरे-धीरे इनमें स्वरों की संख्या बढ़कर; सातों स्वरों का प्रयोग होने लगा । **<u>'नारदीय शिक्षा'</u>** सामवेद के गायन पर प्रकाश डालनेवाला महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । नारदीयशिक्षा के निम्नलिखित श्लोक यह दिखाता है की भिन्न-भिन्न सामगान में भिन्न-भिन्न स्वरों का प्रयोग करते थे ।

(द्वि) तृतीयप्रथमक्रुष्टान् कुर्वन्त्याहरका:स्वरान् ।

व्दितीयाध्यान्स्तु मन्द्रान्तांस्तैत्तिरीयांश्चतुस्स्वरान्।

(ना।शि. १०१०११,पृ० ७ मैसूर संस्करण)

अर्थात आहवरक द्वितीय, प्रथम और क्रुष्ट स्वरों का प्रयोग करते हैं, तैतिरीय द्वितीय से लेकर मंद्र तक चार स्वरों का प्रयोग करते हैं । इससे

पता चलता है की साम में पहले तीन से चार स्वरों का प्रयोग होता था और बाद में धीरे-धीरे सामग्राम पूरे सात स्वरों का बन गया ।

१.५.३ नारद के अनुसार सामग्राम :

वैदिक स्वर संज्ञा	ना.शिक्षा की स्वर-गणना	लौकिक स्वर	नारदीय शिक्षा के अनुसार स्वर
क्रुष्ट	प्रथम	म	म
प्रथम	द्वितीय	ग	ग
द्वितीय	तृतीय	रे	रे
तृतीय	चतुर्थ	सा	सा
चतुर्थ	पंचम	नि़	ध़
मन्द्र	षष्ठ	ध़	नि़
अतिस्वार्य	सप्त	प़	प़

मतलब सामग्राम का प्रथम स्वर ‘क्रुष्ट’ था तथा लौकिक ग्राम का प्रथम स्वर ‘मध्यम’ था।

सामगान का प्रथम स्वर मध्यम था इसका प्रमाण नारदीय शिक्षा में मिलता है । नारदीयशिक्षा में स्वरों का जो क्रम दिया है, उसमें निषाद और धैवत का क्रम उल्टा-पुलटा हो गया है । अवरोही क्रम में निषाद को पहले आना चाहिए था तथा धैवत उसके बाद, किन्तु नारद ने धैवत को

पहले गिनाया है और निषाद को उसके बाद । नारदीयशिक्षा की हस्तलिखित सभी प्रतियाँ में भी स्वरों का यही क्रम देखने कों मिलता है। नारदीयशिक्षा में गात्रवीणा का वर्णन आया है । वहा भी स्वरों का यही क्रम दर्शाया गया है । कुछ विद्वानों के मतानुसार सामवेद का एक वक्र-ग्राम भी था । नारदीयशिक्षा में जो 'म,ग,रे,सा,ध़,ऩी,प़' स्वरों का ग्राम दिया गया है वह यही ग्राम है । खैर जोभी हो, आजकल जीतने भी साम-गायक मिलते है; वे सब 'म,ग,रे,सा,ऩी,ध़,प़' इस प्रकार सीधा अवरोही क्रम मानते है ।

१.५.३.१ सामवेद के स्वरों का स्वरूप :- शताब्दियों सें चले आ रहे सामवेद के गान से यह पता चलता है की सामवेद के स्वरों का स्वरूप और स्थान वही रहा है जो 'भरत' के समय तक शुद्ध ग्राम के स्वर थे, वही सामवेद के स्वर थे । अर्थात हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के काफी और कर्णाटक संगीत पद्धति के खरहरप्रिया से मिलते-जुलते थे ।

भरत, शारंगदेव जैसे शस्त्रकारों ने सामवेद के स्वरों को ही शुद्ध स्वर माना है । अर्थात यही सामवेद का शुद्ध ग्राम था । इस वेद के गान का बारिकि से निरीक्षण करने पर यह ज्ञात होता है की 'गं, रें, सां, नि, ध, प' जो तार स्थान से मध्य स्थान तक आते हैं । तथा जिनकी संज्ञा सामवेद में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार्य है; जो अवरोही क्रम में है । कभी जब गान्धार स्वर लगाते थे तब मध्यम (कृष्ट) स्वर भी गमक के रूप में आ जाता था । अगर इन सात स्वरों को हमें मध्य स्थान में रखना हो तब इनका स्वरुप कुछ इस प्रकार से होगा -

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	क्रुष्ट	अतिस्वार्य	मन्द्र	चतुर्थ

(सं॰चू॰ म॰ अड्यार संस्करण पृ.७८)

सामवेद का जो भी शुद्ध ग्राम था; वही भरत और शारंगदेव के शुद्ध स्वरों के स्थान थे । आधुनिक दृष्टिकोण से संगीत की परिभाषा में यह कह सकते हैं की सामवेद के गंधार तथा निषाद कोमल थे । मतलब की यह ग्राम आधुनिक काफी ठाट से मिलता-जुलता है । काफी का ऋषभ, गांधार और निषाद यह इसके ऋषभ, गांधार तथा निषाद से एक श्रुति ऊँचा है । भारतीय संगीत का यह शुद्ध ग्राम सामवेद के काल से चलकर शारंगदेव के काल तक चला आता रहा । संग्रहचुड़ामणि के उपोद्‌घात में अंग्रेजी में श्रीनिवास ऐयंगर ने सिद्ध किया है की श्रुतियों की दृष्टि से उपरोक्त ग्रामों में षडज, मध्यम और पंचम चतु:श्रुतिक है । ऋषभ और धैवत त्रि:श्रुतिक है और गांधार और निषाद द्विश्रुतिक है । सामवेद के प्रकृत स्वरों की यही व्यवस्था शारंगदेव तक चली आई । आगे चलकर सामगान, भिन्न-भिन्न स्वरों से आरंम्भक होने के कारण साम-गायकों के शुद्ध ग्राम के अतिरिक्त अन्य विकृत स्वरों की भी प्राप्ति हुई । शिक्षा ग्रन्थों में भी विकृत स्वरों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । सायन ने भी इस बात का उल्लेख 'सामवेद भाष्य भूमिका' में किया है-

"सामशब्दवाच्यस्य गानस्य स्वरूपमृगक्षरेषु क्रुष्टादिभि: सप्तभि: स्वरै: अक्षरविकारादिभिश्च निष्पाद्‌यते। क्रुष्ट: प्रथमो व्दितीयस्तुतीयश्चतुर्थ: पंचम: षष्ठश्चैते सप्तस्वरा:। ते च अवान्तरभेदैर्बहुधा भिन्ना:"। (वेदभाष्य भूमिका संग्रह चौ.पृ.६८)

अर्थात साम शब्द का अर्थ गान है । यह सात स्वर क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्ठ इत्यादि सप्त स्वर द्वारा निष्पन्न होता था । ये स्वर भी आवान्तर भेदों से बहुत प्रकार के हैं । स्पष्ट है की सामवेद के गान में सात स्वरों के अलावा विकृत स्वरों का भी प्रयोग होता था ।

१.५.३.२ साम सप्तक के स्वर :- विकसित सामगान के स्वर (यम) तीनों स्थानो में प्रयुक्त होने लगे थे, इसका प्रमाण सामविधान ब्राह्मण और शिक्षा ग्रन्थों में मिलता है । सायण अपने 'भाष्य' में कहते है ।

"उपांशुव्यतिरिक्ता: सर्वा वाच: मंद्र-मध्य-उत्तमभेदेन त्रिस्थाना भवन्ति। तत्र मन्द्रस्थाना वाक् सप्तयमा क्रुष्टादिसप्तस्वरूपा इत्यर्थ:। क्रुष्टादय एवं यमा इत्युच्यन्ते। ते चोत्तरोत्तरं नीचा भवन्ति। एवं माध्यम-उत्तमस्थाने अपि वाचौ वेदितव्ये"। (पृ.४)

अर्थात उपांशु को छोड़कर सभी स्वर मन्द्र-मध्य-उत्तम इत्यादि भेद से तीन स्थान के होते थे । यम क्रुष्टादि इसमे मन्द्र स्थान के सात स्वर होते थे । इनका चलन उत्तरोत्तर नीचे की तरफ रहता था । मध्यम-उत्तम स्थान में भी इस प्रकार के स्वर होते थे । ऋकप्रतिशाख्य में शौनक ने स्पष्ट रूप से कहा है - **"त्रीणि मन्द्र मध्यमम् उत्तमं च स्थानान्याहु: सप्तयमानि वाच:। सप्तस्वरा: ते यमा:"(ऋ॰ प्रा॰१३-४२.४४)**

अर्थात मन्द्र, मध्य और उत्तम ये तीन स्थान सातों यम (स्वर) के होते है । ये सात स्वर यम कहलाते थे । तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में भी लिखा है - **"मन्द्रादित्रिषु स्थानेषु सप्तसप्तयमा:। क्रुष्ट-प्रथम-व्दितीय-तृतीय-चतुर्थ-मन्द्र-अतिस्वार्या: । (तै॰ प्रा॰ २३.११.१२)**

अर्थात क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार्य जैसे यम (स्वर) मन्द्र आदि तीनों स्थानों में सात-सात यम(स्वर) होते थे । कालावधि पूर्व इन तीनों स्थानों के नाम मन्द्र, मध्यम तथा उत्तम थे । बाद में आगे चलकर ये मन्द्र, मध्य तथा तार नाम से कहलाने लगे ।

१.५.३.३ सामगान में श्रुतिजाति :- सामगान में सामगायक स्वरों को जितनी प्रकार सुंदरता से लगा सके लगाते थे, इस विशेष प्रकार के लगाव को सामगायक 'श्रुतिजाति' कहते थे । सामवेद में एसी श्रुतिजाति पाँच मानी गई है, जिनके अलग-अलग चिन्ह सामवेद के स्वरांकन में देखने को मिलते है ।[११]

१.५.३.४ सामगान का ग्राम :- सामगान का ग्राम अवरोही क्रम का होता था । जो मध्यम स्वर से प्रारम्भ होता था ।

१	२	३	४	५	६	७
म	ग	रे	सा	ऩि	ध़	प़

सामगान के गांधार और निषाद कोमल थे ।

१.५.३.५ सामविकार :- ऋग्वेद के मंत्रों को सामगान में गाते समय ज्यों के त्यों न गाकर उनमें कुछ फरक करके मतलब ऋग्वेद के मंत्रों का समुचित विकार अर्थात परिवर्तन करके उनका गायन किया जाता था । ये सब विकार कहलाते थे । जो साम में इस प्रकार के थे -[१] **विकार :-** अर्थात शब्दों में फेरबदल करते हुवे गाना। [२] **विश्लेषण :-** शब्द को खंड करके परिवर्तित रूप में गाना । साम के इस 'विश्लेषण' प्रयोग ने रूपकालाप्ति में 'भंजनी' का और ध्रुपद में लय-बाँट का रूप धारण किया

। [३] **विकर्षण :-** अक्षरोंकों एक विशेष प्रकार से खींचते हुवे लंबा करके गाना । विकर्षण प्रयोग ने आगे चलकर आलाप एवं तान का रूप धारण किया । [४] **अभ्यास :-** एक ही शब्द का बार-बार उच्चारण करना । मतलब पुनरावृत्ति करना । [५] **विराम :-** बीच में थोड़ा रुक-रुक कर या थोड़ी विश्रांति के साथ गाना । [६] **स्तोभ :-** ऋचा गाते समय औहोव, हाउ हाउ इत्यादि उद्‌गारवाचक शब्दों को अपनी ओर से मिला कर गाना । यह उद्‌गारवाचक शब्द सामवेद में लोक संगीत से आये है ।

१.५.३.६ सामगीत के भाग : सामगीत के कुल पाँच भाग है- [१] हँकार अथवा हिंकार [२] प्रस्तार [३] उद्‌गीथ [४] प्रतिहार [५] निधन । ये पाँच भाग को 'भक्तियाँ' सज्ञा थी । साम गायन की प्रस्तुति में तीन गायक होते है । मुख्य गायक को उद्‌गाता सज्ञा थी तथा उदगाता को सहायक होनेवाले गायकों को प्रस्तोता और प्रतिहर्ता कहते हैं ।

१.५.३.७ सामगान मूर्च्छना, जाति तथा राग का आधार :- 'प्रत्येक षडजभावेन' यह सामगान का नियम था । अर्थात सामगान का पहला स्वर जोभी हो आरंभक स्वर कहलाता था । अगर 'म <u>ग</u> रे सा <u>नि</u> ध़ प़' में हम अगर हर एक स्वर को आरंभिक स्वर मान लेते हैं तो भिन्न-भिन्न स्वर प्राप्त होते हैं । उपरोक्त स्वरों में हर एक स्वर को आरंभक स्वर मानते हुए उनका गान करने से मूर्च्छना का आधार रूप सामने आया । आरंभिक स्वरों को बदलने से भिन्न-भिन्न स्वरों की प्राप्ति के कारण भिन्न-भिन्न रूप वाले गान सामने आये । जो की जाति और राग का आधार बना । मतलब की सामगान में मूर्छना, जाति इत्यादि का बीज स्वरूप वर्तमान था । बदले हुए इन आरंभिक स्वरों के कारण जौनपुरी, खमाज, कल्याण, भैरवी, काफी, बिलावल जैसे रागों के स्वरों का इन मूर्च्छना में दर्शन होता है ।[१२]

१.६ ब्राह्मण काल :- इस काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है । ब्राह्मण ग्रंथों में वेदों की व्याख्या, मंत्रों का अर्थ, उनकी प्रयोग विधि, यज्ञों के साथ सम्बन्ध इत्यादि विषय पर प्रकाश डाला है । संगीत की सबसे अधिक चर्चा 'समविधान ब्राह्मण' में पाई जाती है । इसके उपरांत तैत्तिरीय, ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मणों में भी संगीत की चर्चा है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मण काल में कई वीणाएँ एक साथ बजती थी । तथा वीणा वादकों के नायक के लिए 'गणगित्' सज्ञा थी । इस काल में मूर्च्छना का विकास हो चुका था । तथा उनकी संज्ञा भी बन चुकी थी । इस काल में वीणा भिन्न-भिन्न मूर्च्छनाओं में मिलाई जाती थी । उत्तरमन्द्रा षडज ग्राम की पहली मूर्च्छना थी । मूर्च्छना का आरंभ भरत के नाट्यशास्त्र से पूर्व ब्राह्मण काल से ही हो चुका था ।[१३]

१.७ नारदीयशिक्षा

नारद मुनि द्वारा रचित 'नारदीय शिक्षा' यह प्राचीनतम अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ की रचना काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है । ठाकुर जयदेव सिंह के मतानुसार 'नारदीय शिक्षा' यह नाट्यशास्त्र के पूर्ववर्ती ग्रंथ है । यह ग्रन्थ सामवेद का शिक्षा-ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में संगीत से सम्बन्धित उदात्त, अनुदात, साम में प्रयुक्त स्वरों के ग्राम, क्रम, उसी प्रकार आर्चिक, गाथिक, स्वरान्तर, औडव, षाडव, सम्पूर्ण, श्रुतिजाति, गात्रवीणा इत्यादि के विषय में जो सामगान से सम्बन्धित थे उनपर पर्याप्त प्रकाश डाला है ।[१४]

१.७.१ स्वरों के तीन स्थान :- नारद द्वारा रचित 'नारदीय शिक्षा' के अंतर्गत नारद ने स्वरोच्चार के मुख्य तीन स्थान माने हैं-

"नीचमध्यमोत्तमरूपतया वाक् उरसि, कण्ठे, शिरसि च अभिव्यज्यते"। (पृ.५ , मैसूर सं०)। अर्थात नीचे के स्वर उर, बीच के स्वर कण्ठ और ऊँचे स्वर शिर में अभिव्यक्त होते थे । नारदीय शिक्षा में यह बात वेद पाठ के सम्बन्ध में की है। **उर: कण्ठशिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये ।**

सवनान्याहुरेतानि सान्मश्चाप्यधरोत्तरे । १.१.७ (मै०सं०)

अर्थात वाङ्मय में उर, कण्ठ, तथा शिर ये तीन स्वर स्थान है । साम संबन्धित सवन; प्रात: उर(नीचे स्वर) स्थान में, दोपहर में कण्ठ(मध्य स्थान के स्वर)तथा सायंकाल में शिर स्थान(तार स्थान के स्वर) में गान होना चाहिए ।

१.७.२ पशु-पक्षियों की ध्वनि से तारता का निर्धारण :- नारद ने स्वरों की तारता का निर्धारण पशु-पक्षियों की अलग-अलग ध्वनि से किया है । मयूर से षड्ज, गाय से ऋषभ, बकरी से गान्धार, क्रौच से मध्यम, कोयल से पंचम, अश्व से धैवत तथा कुंजर से निषाद इत्यादि स्वरों की ध्वनियाँ मानी गई है ।

तदुपरांत इन स्वरों के उच्चारण स्थान निर्दिष्ट है ।

स्वर	**उच्चारण स्थान**
षड्ज	कण्ठ
ऋषभ	शिर
गान्धार	अनुनासिक
मध्यम	उर
पंचम	उर, शिर तथा कण्ठ

धैवत ललाट

निषाद ललाट इत्यादि सभी शारीरिक संधियाँ (पृष्ठ २४, मैसूर सं॰)

तदुपरांत इसके अन्तर्गत नारद ने स्वरों के उदभव स्थान को लेकर विस्तृत चर्चा की है ।

१.७.३ स्वरों का उद्भव स्थान तथा नामकरण : नाक, कण्ठ, उर, तालू, जिव्हा तथा दाँत इन छः स्थानों के मिश्रण से षड्ज स्वर पैदा होता है । षट् = छः, ज = जन्म देने वाला । अर्थात यह छः स्वरों को जन्म देने वाला होने से इसे षड्ज कहा गया । नाभि से जब आवाज़ उठकर कण्ठ तथा शिर की ओर जाती है तब बैल के आवाज़ के समान ध्वनि निकलने से ऋषभ की उत्पत्ति होती है । नाक द्वारा वायु से जो स्वर निकलता है वह गंधार है । जब वायु नाभि से उठकर उर तथा हृदय में लगती है; तब उत्पन्न होने वाली ध्वनि मध्यम है । वायु जब नाभि, उर, हृदय, कण्ठ तथा शिर इन पाँच स्थानों को स्पर्श करती है तब जो ध्वनि निकलती है; पंचम की उत्पत्ति होती है । नारदजी ने धैवत तथा निषाद के लिए उत्पत्ति स्थान ललाट माना है ।[१५]

नारद ने 'नारदीय शिक्षा' के अंतर्गत वैदिक और लौकिक दोनों संगीत का वर्णन किया है । गन्धर्व एवं वैदिक संगीत प्राचीन है तथा मार्गी संगीत इसके बाद का है । उदात्त में निषाद एवं गान्धार, अनुदात में ऋषभ एवं धैवत तथा स्वरित में षडज, मध्यम, पंचम आदि लौकिक स्वर अंतरसमाहित है । नारद ने सात लौकिक स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना, उन्नचास तान इन सब की एक सामूहिक संज्ञा को '<u>स्वरमंडल</u>'

बताया है । स्वरों में षडज ऋषभ गान्धार मध्यम पंचम धैवत निषाद का उल्लेख है । ग्राम शब्द का अर्थ होता है 'समूह' ।

षड्ज-मध्यम-गान्धारास्त्रयो ग्रामा: प्रकीर्तिता: । (मैसूर सं॰ पृ.११)

नारद ने षडज, मध्यम तथा गान्धार ये तीन ग्राम बताए हैं । षडज को भूलोक, मध्यम को भुवलोक तथा गान्धार ग्राम को स्वर्ग लोक का कहा है ।

मूर्च्छनाओं में देवताओं की, पितरों की तथा ऋषियों की सात-सात मूर्च्छनाएँ मानी है । -

देवताओं की मूर्च्छना	पितरों की मूर्च्छना	ऋषियों की मूर्च्छना
१) नन्दी	१) आप्यायनी	१) उत्तरमन्द्रा
२) विशाला	२) विश्वभृता	२) अभिरूद्गता
३) सुमुखी	३) चन्द्रा	३) अश्वक्रान्ता
४) चित्रा	४) हेमा	४) सौवीरा
५) चित्रवती	५) कपर्दिनी	५) हृष्यका
६) सुखा	६) मैत्री	६) उत्तरायता
७) बला	७) बार्हती	७) रजनी

शारंगदेव ने ऋषियों की मूर्च्छना को षड्जग्राम की, पितरों की मूर्च्छना को मध्यम ग्राम की तथा देवों की मूर्च्छना को गान्धारग्राम की मूर्च्छना बताई है । नारद की जो पितरों की मूर्च्छना है उसके अन्तर्गत

शारंगदेव ने 'विश्वभृता' के स्थान पर 'विश्वकृता' तथा 'बार्हती' के स्थान पर 'चान्द्रमसी' बताई है ।

१.७.४ नारदीयशिक्षा के अनुसार राग शब्द तथा ग्रामराग का अर्थ :- इस ग्रंथ के अन्तर्गत सात स्वरों के रंग (लाल,हरा इत्यादि) तथा इस उपरांत ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि स्वरों की जातियाँ बताई है । इस ग्रंथ में साम गान के स्वरों के साथ लौकिक स्वरों की तुलना की है । साम गान का प्रथम स्वर वेणु का 'मध्यम' स्वर है तथा बाकी के द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ तथा सप्तम स्वर क्रमश: ग, रे, सा, नि, ध तथा प होते है ।

नारदीय शिक्षा में "**स्वररागविशेषण ग्रामरागा इति स्मृता:"।** यह पंक्ति आई है । जिसमें जो राग शब्द प्रयुक्त हुआ है वो क्रमश: यौगिक, रूढ़ तथा योगरूढ़ इन तीनों के अर्थों में प्रयोग किया गया है । पहले राग शब्द केवल यौगिक अर्थ में प्रयुक्त होता था । अर्थात 'रज्यते अनेन इति रागः'। अर्थात जिसके द्वारा चित्त का रंजन हो; जो चित्त को प्रसन्न करे वह राग कहलाता है । कालान्तर में इसका अर्थ आगे योगरूढ़ में बदल गया । अर्थात स्वरों की वह विशेष सामूहिक रचना तथा इनका संचरण जिसके द्वारा मन प्रफुल्लित हो उसे 'राग' कहा जाने लगा । (राग शब्द को 'रूढ़', 'यौगिक' और 'योगरूढ़' इन तीनों प्रकार का माना गया है । 'रूढ़' किसी शब्द के प्रसिद्ध अथवा प्रचलित अर्थ को कहा जाता है । 'यौगिक' का अर्थ होता है- व्युत्पत्ति मूलक अथवा व्युत्पत्ति के अनुसार तथा 'योगरूढ़' से अभिप्राय- सामान्य अर्थ छोड़कर विशेष अर्थ से है । राग शब्द इन तीनों गुणों से युक्त है अर्थात जिसके द्वारा रंजन हो वह राग है । (डॉ. अशोक कुमार 'यमन' पृष्ट सं. ३०८)) ग्राम के कुछ स्वर सन्निवेश लेकर उसमें कोई विशेष स्वर को प्रधान रखा जाता था, तब वह '**<u>स्वरराग</u>'** कहलाता था । इसी स्वर को अंश स्वर भी कहते थे । इसी स्वरविशेष के रंजकत्व

से ग्राम के स्वरसन्निवेश में एक विशेष प्रकार की मधुरता पैदा होती थी। इस वजह से यह; ग्राम राग कहलाते थे । नारद के अनुसार किसी विशेष स्वर की रंजकता की वजह से यह 'ग्रामराग' कहलाते थे । ग्राम रागों का वर्णन करते समय नारदजी ने अंश और न्यास के स्वरों पर अधिक भार दिया है; जो प्रधान स्वर होता था वही अंश स्वर होता था ।[१६]

सात ग्राम रागों का उल्लेख नारदीय शिक्षा में पाया जाता है । ये सात ग्रामराग काफी समय तक प्रचार में रहे । 'हरिवंश' जो महाभारत का एक 'खिल' ग्रन्थ है । इसमें षड् (छ) ग्राम रागों का उल्लेख सबसे पहले मिलता है । इसमें उनके नाम नहीं गिनाये हैं । उसी प्रकार मार्कण्डेय-पुराण मे भी ग्रामराग सात बताए है । लेकिन उनके लक्षण के विषय में कुछ नहीं बताया है । नारदीय शिक्षा तथा मार्कण्डेय-पुराण यह दोनों संग्रह ग्रन्थ हरिवंश के बाद के हैं । नारदीय शिक्षा के ग्राम रागों के वर्णन से यह स्पष्ट नहीं होता की वे किस प्रकार से गाये-बजाए जाते थे । हाँ कुछ लक्षण जरूर मिल जाते हैं । ग्रामरागों में विशेषत: न्यास के स्वर या किसी विशेष स्वर के प्राधान्य को लेकर बहुत महत्त्व दिया जाता था । नारद के अनुसार "गांधाराभावे तु षाडवम्" अर्थात गांधार स्वर जिसमे वर्ज है ऐसे स्वर समूह को षाडव कहेंगे । न्यास (न्यास) स्वर के अलावा किसी स्वर विशेष को छोड़ने का सिल-सिला अथवा चलन का यहाँ से प्रारंभ हुवा। षाडवग्राम(राग) में मध्यम पर न्यास बताया है । मतलब की इसका रागस्वर मध्यम होगा । नारदजी पंचम ग्राम (राग) के विषय में चर्चा करते समय पुनः न्यास स्वर पर ज़ोर देते हैं । 'यदि पंचमे विरमते' अर्थात पंचम पर न्यास करने से यह पंचमग्राम राग कहलाएगा जिसका रागस्वर पंचम है । षड्जग्राम की चर्चा करते हुए नारदजी कहते है "**ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत्। धैवत: कम्पितो यत्र षड्जग्रामन्तु निर्दिशेत् ।।** मतलब की ऐसा विशिष्ट स्वरसन्निवेश जिसमें

निषाद स्पर्श रूप हो, धैवत कम्पित तथा गांधार का वर्चश्व (प्राधान्य) हो; वह षडजग्राम (राग) है । उसी प्रकार मध्यमग्राम राग के लिए नारद ने गांधार को आधिपत्य बहुत्व न्यास स्वर बताया है । इसमे न्यास स्वर गांधार होने के कारण राग स्वर भी गांधार होगा । कौशिक मध्यम ग्राम(राग) का वर्णन करते समय नारद ने न्यास शब्द का स्पष्ट प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है । कौशिक मध्यम ग्राम(राग) मध्यम से प्रारम्भ होता था । तथा इसमें सभी स्वर प्रयुक्त होते थे । इसका न्यास स्वर मध्यम है । जिस ग्राम में काकलि निषाद का प्रयोग होता है तथा पंचम स्वर प्रधान रहता है । उसे नारदजी ने कैशिक (ग्राम्रराग) बताया है । उपरोक्त ग्राम एक विशेष स्वरसन्निवेश थे जिनमें कोई एक स्वर प्रधान होता था । नारदीय शिक्षा में वर्णित षड़जग्राम, मध्यमग्राम, पंचमग्राम, षाडव, साधारित, कौशिक मध्यम तथा कैशिक ग्रामराग इत्यादि के इस प्रकार के स्वर-समूह दक्षिण भारत के पुडूकोट्टई में कुडुमियामालई स्थान में मिले हुये शिलालेख में अंकित है । जो नारदीय शिक्षा में वर्णित ग्रामरागों के अधिक विकसित रूप है । उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है की विशेष स्वर समूह, न्यास तथा षाडत्व इत्यादि विषय वस्तु के कारण इनमें राग का स्वरुप विद्यमान था ।

१.८ ग्रामरागों का नामकरण तथा विकास क्रम :- ग्राम का सर्वसम्मत अर्थ ‘स्वर समूह’ था । प्रारम्भिक अवस्था में इन स्वर-समूहों की संख्या सात न थी । कोई भी स्वर-समूह जो स्पष्ट रूप से आसानी से गाते थे वह ‘ग्राम’ कहलाता था । गितालंकार में उस स्वर समूह को ग्राम कहा गया है जो गेय था । ये तीन थे - नन्द्यावर्त, जीभूत तथा सुभद्र। गितालंकार में इन तीनों ग्रामों के लक्षण दिये हैं । तथा इनमें केवल चार स्वरों का समूह माना है । यह गेय स्वर-समूह थे । इन स्वर-समूह के आधार पर जो धुनें बनी वे ग्रामराग कहलाई । आगे चलकर यह ग्राम

सात स्वरों का बन गया तथा षडज ग्राम और मध्यम ग्राम यह प्रचार में आये । तथा षडजग्राम एवं मध्यमग्राम इन दो मुख्य ग्रामों से साधारण विधि से दो और स्वर समूह मिले जो ग्राम के समान थे । जिनमें अन्तर गान्धार और काकलि स्वर का प्रयोग होता था; वे स्वर-समूह साधारित कहलाये । तथा इस विधि को साधारण विधि कहते थे । षडज ग्राम से जो साधारित स्वर-समूह मिला उसे षडज साधारण तथा मध्यमग्राम से मिलने वाला साधारित स्वरुप मध्यम साधारण या कैशिक कहलाया । मतलब की ग्राम की (ग्राम-राग) संख्या तीन से बढ़कर पाँच हो गई । नाट्यशास्त्र में इन्हीं पाँच ग्राम रागों का उल्लेख है । जिनका प्रयोग नाटकों की भिन्न-भिन्न सन्धियों में होता था । इस प्रकार नाटकों की सन्धियों में इनका प्रयोग कोई प्राचीन परम्परा थी जिसका उल्लेख नाट्यशास्त्र में है । वैसे ग्रामराग शब्द का प्रयोग नाट्यशास्त्र में कहीं नहीं हुआ है । हरिवंश (४-५ ईस्वी शती) में छः ग्रामरागों का उल्लेख प्राप्त है। मतलब आगे चलकर ४-५ इस्वी. शती तक ग्राम रागों की संख्या छः हो चुकी थी । हो सकता है की जब आगे चलकर राग की अवधारणा में परिवर्तन हुआ हो तब प्राचीन प्रतिष्ठा के कारण मुख्य छः राग माने गए हो । आगे चलकर ग्राम्ररागों का विकसित रूप नारदीय शिक्षा में मिलता है। इसमें और एक ग्राम राग जुड़ जाने से ग्रामरागों की संख्या सात हो गई । इसके अलावा नारद के समय में कुछ ऐसे स्वरसमूह या स्वरसन्निवेश बने जो मुख्य ग्राम रागों का विकसित स्वरूप था । हरेक ग्रामरागों में एक न्यास स्वर होता था । स्वर-समूह में से कोई स्वर-विशेष को वर्जित करके एक विशिष्ट स्वरसन्निवेश बनाने की सिल-सिलेवार प्रथा का प्रारंभ यहाँ से शुरू हुवा । आगे चलकर लगभग सातवीं शती का 'कुडुमियामालई' के शिलालेख में ग्रामरागों के अंश और न्यास स्वर दोनों स्पष्ट है । आगे आठवी शती तक ग्राम रागों का रूप और

विकसित हो गया; इस समय ग्राम रागों के स्वरसन्निवेश तथा अंश, न्यास स्वर, बहुत्व इत्यादि पहले से अधिक स्पष्ट होने लगे तथा इनका गायन पंचगीतिशैलियों (शुध्दा, भीन्ना, वेसरा, गौड़ी तथा साधारणी) में होने लगा ।

मतंग मुनी तक इनका पूर्ण विकसित रूप दिखाई देता है । जैसे-जैसे रागों की अवधारणा में परिवर्तन होता गया वैसे वैसे ग्राम राग प्रचार से नाबुत होते गये । शारंगदेव तक इनका प्रचार ख़त्म सा हो गया था |[१७]

१.९ नाट्यशास्त्र

भरतमुनिकृत-नाट्यशास्त्र मूलतः नाट्यशास्त्र विषयक ग्रंथ है परंतु इसके २८ से लेकर ३४ तक के अध्याय संगीत से सम्बन्धीत है । २८ वें अध्याय में स्वरों के नाम दिखाये है । नाट्यशास्त्र के रचना काल के विषय में मत मतान्तर है । कोई इसे दूसरी शताब्दी का मानते हैं तो कोई तृतीय शताब्दी का । संगीतांजलि ग्रंथ में प्रो॰ प्रेमलता शर्मा ने नाट्यशास्त्र का रचना काल ई॰पू॰ से ५ वीं शताब्दी तक का माना है । कोई इसे २०० ई॰पू॰ से ५०० ई॰पू॰ का मानते है ।

भरत के अनुसार स्वर :-

षड्जश्र्च ऋषभश्र्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ।

पंचमो धैवतश्र्चैव निषाद: सप्तच स्वरा: ।।२१।।

अर्थात षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद ये सात स्वर है।

चतुर्विधत्वमेतेषां विज्ञेयँ श्रुतियोगत: ।

वादी चैवाथ संवादी हयनुवादी विवाध्यपि ॥२२॥

अर्थात इन सात स्वरों के श्रुति के योग से (१) वादी (२) संवादी (३) विवादी (४) अनुवादी ऐसे चार विभेद (प्रकार) हो जाते हैं । भरत के अनुसार अंश स्वर ही वादी स्वर है । जिनमें नौ तथा तेरह श्रुतियों का अन्तर हो वे परस्पर संवादी स्वर होते हैं; जैसे सा प, रे ध, ग नी, सा म इत्यादि । विवादी स्वर में यही स्वर दो श्रुतियों के अन्तर से होते हैं जैसे ऋषभ और गांधार, धैवत और निषाद परस्पर विवादी स्वर है । इनके अतिरिक्त बाकी के स्वर अनुवादि है । मुख्य स्वर को वादी स्वर कहते थे तथा वादी के सहायक स्वर को संवादी स्वर कहते थे ।[१८]

१.९.१ ग्राम तथा ग्राम के प्रकार :- ग्राम शब्द का अर्थ है 'समूह'। नाट्यशास्त्र में भरत ने दो ग्रामों का उल्लेख किया है (१) षड्ज़ग्राम तथा (२) मध्यम-ग्राम । तृतीय गांधार ग्राम का उल्लेख भरत ने नहीं किया है।

<u>षड्ज़ग्राम के स्वर</u>	<u>मध्यमग्राम के स्वर</u>
षड्ज	मध्यम
ऋषभ	पंचम
अन्तर-गांधार	धैवत
मध्यम	निषाद
पंचम	षड्ज
धैवत	ऋषभ
निषाद	गांधार

भरत ने षडजग्राम के अन्तर्गत २२ श्रुतियों को मानकर इन श्रुतियों का स्वर विभाजन “चतुश्चचतुश्चचतुश्चैव” के सिद्धांत पर; अर्थात ४,३,२,४,४,३,२ के आधार पर किया है । अर्थात षड्जग्राम के अन्तर्गत षडज की चार, ऋषभ की तीन, गांधार की दो, मध्यम की चार, पंचम की चार, धैवत की तीन तथा निषाद की दो श्रुतियाँ मानी है । मध्यमग्राम में केवल इतना अन्तर है की उसका पंचम तीन श्रुति का होता है तथा धैवत चार श्रुति का होता है । अर्थात षडजग्राम के स्वरों में यदि पंचम स्वर को एक श्रुति कम पर स्थापित किया जाय तो मध्यमग्राम बन जाता है । भरत ने अपने हरेक स्वर को अन्तिम श्रुति पर रखा है ।

षडजग्राम :

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६ १७	१८ १९ २०	२१ २२
स्वर नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नी

मध्यमग्राम :

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६	१७ १८ १९ २०	२१ २२
स्वर नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नी

१.९.२ सारणा :- भरत की चतु: सारणा विधि [प्रक्रिया] का मुख्य हेतु उभय ग्रामों की २२ श्रुतियों को स्पष्ट करना है । अर्थात श्रुति की अवधारणा निश्चित करने हेतु तथा प्रत्येक स्वर कितनी श्रुतियों का है,

एवं एक ग्राम में २२ श्रुतियाँ ही हो सकती है यह स्पष्ट करना है । इसी प्रकार 'प्रमाणश्रुति' के लिए भी भरत की सारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

श्रुति दर्शन के लिए सर्व प्रथम भरत ने एक समान दो वीणा ली; जिनके तार, दण्ड, लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई, बनावट इत्यादि एक समान है, तथा इन दोनों की मूर्च्छना भी एक समान है । यह दोनों वीणाओं को सर्व प्रथम उन्होंने षडजग्राम में मिलाकर एक को चल वीणा तथा दुसरी को अचल वीणा नाम दिया ।

प्रथम सारणा :- अब चल वीणा के पंचम को इतना उतारदो की उसका अचल वीणा के ऋषभ के साथ (षडज-मध्यम भाव से) संवाद होने लगे, बाद में इसी उतरे हुए पंचम के सहारे उसके अनुपात में बाकी के स्वर उतारकर पुन: चल वीणा को षडजग्राम में मिलालें । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो चल वीणा के षडज ग्राम के चतु:श्रुतिक पंचम को एक श्रुति उतारने से त्रिश्रुतिक सिद्ध होता है अर्थात मध्यम ग्राम की स्थापना होती है । अब अचल वीणा तथा चल वीणा के उतरे हुए पंचम में जो अन्तर है वह ही '**प्रमाण-श्रुति**' है । चल वीणा के उतरे हुए पंचम के आधार पर चल वीणा को फिर से षडज ग्राम की स्वरावली में स्थापित करने से एक-एक श्रुति बाकी के स्वर उतर जायेंगे ।

द्वितीय सारणा :- अब फिर से इसी विधि के अनुसार चल वीणा के पंचम को उतार कर उसके अनुपात में चल वीणा वापस षडजग्राम में मिलालें । इस विधि से चल वीणा के गांधार तथा निषाद, अचल वीणा के ऋषभ तथा धैवत से मिल जायेंगे मतलब चल वीणा; अचल वीणा से दो श्रुति उतरी हुई प्रतीत होगी ।

<u>तृतीय सारणा</u> :- वापस यही विधि दोहराने से मतलब चल वीणा के पंचम को उतारने से तथा इस उतरे हुए पंचम के आधार पर चल वीणा को वापस षडजग्राम में स्थापित करने से चल वीणा के 'रे' और 'ध' अचल वीणा के 'सा' और 'प' से मिल जायेंगे ।

<u>चतुर्थ सारणा</u> :- और एक बार यही विधि फिर से दोहराने से चल वीणा के प्रत्येक स्वर अचल वीणा के स्वरों से चार श्रुति नीचे उतर जायेंगे तथा चल वीणा के सा, म और प अचल वीणा के नि,ग और म से बिलकुल एकरूप हो जायेंगे । इसे हम तालिका द्वारा समझने की कोशिश करेंगे ।

<u>सारणा चतुष्टई तालिका</u>

अचल वीणा

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६ १७	१८ १९ २०	२१ २२
स्वर नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नी

<u>प्रथम सारणा</u>

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६ १७	१८ १९ २०	२१ २२
अचल-वीणा के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नी
चल-वीणा के स्वर	सा	रे	ग	*म*	प	ध	नी

<u>द्वितीय सारणा</u>

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६ १७	१८ १९ २०	२१ २२
अचल-वीणा के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नी
चल-वीणा के स्वर	सा	रे ***ग***		म	प	ध ***नी***	

<u>तृतीय सारणा</u>

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६ १७	१८ १९ २०	२१ २२
अचल-वीणा के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नी
चल-वीणा के स्वर	सा ***रे***	ग		म	प ***ध***	नी	

<u>चतुर्थ सारणा</u>

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३	१४ १५ १६ १७	१८ १९ २०	२१ २२
अचल-वीणा के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नी
चल-वीणा के स्वर	रे	ग	***म***	*प*	ध	नी	***सा***

सारणा"१९

इस प्रकार सारणा चतुष्ठी द्वारा दोनों ग्रामों की २२ श्रुतियों का ज्ञान होता है ।

<u>ग्रामों में श्रुतियों का स्वरगत विभाजन</u> :- <u>षड्जग्राम</u> में षड्ज (चतु:श्रुतिक), ऋषभ(त्रिश्रुतिक), गांधार(द्विश्रुतिक), मध्यम(चतु:श्रुतिक), पंचम(चतु:श्रुतिक), धैवत(त्रिश्रुतिक), निषाद(द्विश्रुतिक)

<u>मध्यमग्राम</u> में मध्यम(चतु:श्रुतिक), पंचम(त्रिश्रुतिक), धैवत(चतु:श्रुतिक), निषाद(द्विश्रुतिक), षड्ज(चतु:श्रुतिक), ऋषभ(त्रिश्रुतिक), गांधार(द्विश्रुतिक)

।। २७-२८।।[२०]

१.९.३ मूर्च्छना :- भरत के अनुसार 'क्रमयुक्ता: स्वरा: सप्त मूर्च्छना' अर्थात सातों स्वरों का एक क्रम में प्रयोग मूर्च्छना कहलाती है । भरत ने षडजग्राम की सात तथा मध्यमग्राम की सात इस प्रकार १४ मूर्च्छनाएँ बताई है ।

	षड्जग्राम की मूर्च्छनाएँ			मध्यमग्राम की मूर्च्छनाएँ		
	स्वर	मूर्च्छना	भरत के अनुसार स्वर और श्रुति	स्वर	मूर्च्छना	भरत के अनुसार स्वर और श्रुति
१	सा	उत्तरमन्द्रा	सरेगमपधनि ४३२४४३२	म	सौवीरी	म प ध नि सां रें गं ४३४२४३२
२	नि	रजनी	ऩिसारेगमपध २४३२४४३	ग	हरिणाश्वा	ग म प ध नि सां रें २४३४२४३
३	ध	उत्तरायता	ध़ऩिसारेगमप ३२४३२४४	रे	कलोपनता	रे ग म प ध नि सां ३२४३४२४
४	प	शुद्धषड्जा	प़ध़ऩिसारेगम ४३२४३२४	सा	शुद्धमध्या	सा रे ग म प ध नि ४३२४३४२
५	म	मत्सरीकृता	म़प़ध़ऩिसारेग ४४३२४३२	ऩि	मार्गी	ऩि सा रे ग म प ध २४३२४३४
६	ग	अश्वक्रान्ता	ग़म़प़ध़ऩिसारे २४४३२४३	ध़	पौरवी	ध़ ऩि सा रे ग म प ४२४३२४३
७	रे	अभिरूद्गता	ऱेग़म़प़ध़ऩिसा ३२४४३२४	प़	हृष्यका	प़ ध़ ऩि सा रे ग म ३४२४३२४

उपरोक्त मूर्च्छना में प्रत्येक आरंभिक स्वर को षड्ज मानने से जो स्वर समूह सामने आये इनमें काफी, बिलावल, भैरवी, आसावरी, खमाज तथा कल्याण इत्यादि थाटों के स्वर जैसे स्वर विद्यमान थे । अर्थात यह मूर्च्छनाएँ आधुनीक थाटों की निवरूप समान थी ।[२१]

भरत ने मूर्च्छनाश्रित ८४ तानें बताई है । यह तानें मूर्च्छना को षाडवित तथा औडुवित करने से बनती है । जैसे की षडजग्राम में प्रत्येक मूर्च्छना में षडज, ऋषभ, पंचम और निषाद यह चार स्वर क्रमश: एक-एक छोड़ देने से प्रत्येक मूर्च्छना में चार षाडव तानें बनेंगी । मतलब षडज ग्राम की २८ षाडव तानें बनेंगी । (७*४=२८)

उसी प्रकार मध्यम ग्राम प्रत्येक मूर्च्छना में षडज, ऋषभ और गांधार यह तीन स्वर क्रमश: बारी-बारी छोड़ने से मध्यम ग्राम की २१ षाडव तानें बनेंगी ।(७*३=२१) । इस प्रकार दोनों ग्रामों की मिलाकर कुल ४९ षाडव तानें होगी । पाँच स्वरों की औडव तानों में षडजग्राम में एक मूर्च्छना में षडजपंचम रहित, ऋषभपंचमहीन तथा गांधारनिषादहीन तीन औडव तानें होती है अर्थात षडजग्राम की सात मुर्च्छनाओं में (७*३=२१) कुल २१ औडव तानें होगी । उसी प्रकार मध्यम ग्राम की एक मूर्च्छना में गांधारनिषादहीन तथा ऋषभधैवतहीन दो तानें होती है; अर्थात मध्यमग्राम की सात मुर्च्छनाओं में कुल (७*२=१४) १४ औडव तानें होगी । इस प्रकार दोनों ग्रामों की कुल मिलाकर ३५ षाडव तानें होगी ।

दोनों ग्रामों की (षाडव ४९ +औडव ३५= ८४) कुल मिलाकर ८४ तानें होंगी।

साधारण- स्वरों के नामान्तर को साधारण कहा जाता है । दो स्वर के बीच की स्थिति यह ‘स्वरसाधारण’ है । भरत ने साधारण के दो प्रकार बताये है (१) स्वरसाधारण (२) जातिसाधारण |

स्वरसाधारण:- भरत ने दो श्रुति चढ़े हुए निषाद को काकली निषाद तथा दो श्रुति चढ़े हुए गंधार को अन्तर गान्धार की संज्ञा दी है । काकली निषाद यह निषाद तथा षडज के बीच का अंतरस्वर है; उसी प्रकार अन्तर गान्धार यह स्वर भी शुद्ध गान्धार तथा मध्यम के बीच का स्वर है । इस वजह से ये साधारण स्वर कहलाते है ।

जातिसाधारण :- जाति-साधारण के विषय में नाट्यशास्र के प्राप्य तीनों संस्करण में भिन्नता पायी जाती हैं । बड़ौदा संस्करण के अनुसार- '**जातिसाधारणमेकांशानामविशेषाज्जातीनांसमवायात्प्रत्यंशं लक्षणसंज्ञानमिति**।'

इससे यह स्पष्ट संदर्भित होता है की यदि जातियों के अंश एक सरीके हो तथा इनका गान समान हो, तब इन्हें '**जातिसाधारण'** कहते थे ।[२२]

१.९.४ जाति :- जाति की कोई परिभाषा भरत ने स्वयं नहीं दी है । अभिनवगुप्त जाति की परिभाषा इस प्रकार करते है- स्वरा एव विशिष्ट: सन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयं च जनयन्तो जातिरित्युक्ता: । कोSसौ सन्निवेश इति चेज्जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेश: । (भ.को. पृ. २२७)। रंजकता और अदृष्ट अभ्युदय को उत्पन्न करने वाला विशिष्ट स्वर जो विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर 'जाति ' कहलाता था । ऐसा विशेष सन्निवेश दस लक्षणों से युक्त होने पर होता था । आचार्य मतंग जाति की परिभाषा इस प्रकार करते हैं- श्रुति और ग्रह स्वरादि के समुदाय से उत्पन्न होती है, जो जातियाँ राग-जननी होती है उन्हें जाति की संज्ञा दी गई है ।[२३]

रंजकता यह जातिका मुख्य लक्षण है । जातियाँ वे धुनें थी जो लोक संगीत से उद्गमित थी । परन्तु आवश्यक संस्कार और परिस्कार(मूल्य) की वजह से इन्हे शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त हुआ ।

इनका आधार वैदिक काल की धुनें थी । 'मार्ग' संगीत में इनकी गणना इसी प्राचीनता के चलते की गई है । जाति के तथा राग के लक्षण एक समान दिखाई पड़ते हैं ।

जाति, जातिराग तथा ग्रामराग इन तीनों का उल्लेख भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में किया है । जातिराग यह जाति तथा राग इन दोनों के बिच की स्थिति है । इसके उपरान्त मध्यमग्राम, षडज, साधारित, पंचम, कैशिक, षाडव तथा कैशिक मध्यम यह सात ग्राम्रागों का उल्लेख है जो पूर्व (अनादी काल) से चले आ रहे थे, जिनके गायन का प्रयोग नाटकों के भिन्न-भिन्न अवसरों पर किया जाता था ।[२५]

भरत ने षडज ग्राम की ७ तथा मध्यम ग्राम की ११ इस प्रकार कुल १८ जातियाँ मानी है ।

षडज-ग्रांम की जातियाँ :- षडजी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षडजोदीच्यवती, षडज-कैशिकी तथा षडज-मध्यमा यह सात जातियाँ हैं जिनमें से प्रथम चार शुद्ध तथा बाकी की तीन विकृत जातियाँ हैं ।

मध्यम-ग्राम की जातियाँ :- मध्यम-ग्राम में रहने वाली जातियों में गांधारी, रक्तगान्धारी, गान्धारोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा, मध्यमा, पंचमी, गान्धारपंचमी, आँन्ध्री, नन्दयन्ती, कर्मारवी तथा कैशिकी यह ११ जातियाँ हैं । इनमें से गांधारी, मध्यमा, पंचमी यह तीन शुद्ध तथा बाकी की ८ विकृत जातियाँ है ।

शुद्ध जातियों में सात स्वर लगते हैं कोई स्वर छोड़ा नहीं जाता था। इनके अंतर्गत जातिका नाम-स्वर ही अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर होता हैं । शुद्ध जातियों में न्यास स्वर को छोड़कर एक-दो या अधिक लक्षणों में विकृत हो जाने पर यही जातियाँ विकृत जातियाँ कहलाती है । अठारह

जातियों में से ग्यारह जातियाँ विकृत होने का कारण दो या दो से अधिक जातियों का आपस में एक दुसरे के (परस्पर संयोग) संसर्ग या सम्पर्क में आना है ।

ग्रामों में जातियों की स्वर संख्या :-

सात स्वरों वाली जातियाँ - सम्पूर्ण

छः स्वरों वाली जातियाँ - षाडव

पाँच स्वरों वाली जातियाँ - औडव

अठारह जातियों में से चार जातियाँ सम्पूर्ण हैं, चार षाडव तथा शेष दस औड़व हैं । जो इस प्रकार है-

सम्पूर्ण जातियाँ- मध्यमोदिच्यवा, षड्जकैशिकी, करमारवी तथा गान्धार-पंचमी ।षाडव जातियाँ- गान्धारोदीच्यवा, न्दयन्ती, आन्ध्री ये तीन मध्यमग्राम की तथा षड्जग्राम की षाड्जी ।

औडव जातियाँ- गान्धारी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, पंचमी तथा कैशिकी ये पाँच मध्यमग्राम से एवम षड्जग्राम से नैषादी, आर्षभी, धैवती, षडज-मध्यमा और षडजोदीच्यवती ।[२५]

जाति गायन :- प्राचीन काल में रागों के स्थान पर जाति गायन की प्रथा प्रचलित थी। रागों के पूर्व रूप को ही जाति कहते हैं ।

जाति के दसविध लक्षण :- भरत ने जाति के दस लक्षण निम्नानुसार बताए है । (१) ग्रह (२) अंश (३) तार (४) मन्द्र (५) न्यास (६) अपन्यास (७) अल्पत्व (८) बहुत्व (९) षाडव (१०) औड़व

१.९.५ नाट्यशास्त्र में वर्ण तथा अलंकार :-

वर्ण :- प्रत्यक्ष गान-क्रिया को भरत ने वर्ण संज्ञा दी है । "वर्ण शब्देन गान मुच्यते" । भरत ने आरोही, अवरोही, स्थायी तथा संचारी वर्ण को विस्तृत वर्णित किया है । अलंकारों की उत्पती इन्हीं वर्णों से मानी गई है। नाट्यशास्त्र के उन्तीसवें अध्याय के अंतर्गत भरत ने अलंकारों की विस्तृत चर्चा की है ।

१.९.६ भरतकालीन गीतियाँ :-

भरत ने २९ वें अध्याय मे ३३ अलंकारों का वर्णन करने के बाद गीति के विषय में बताते हुए गीति के चार प्रकार बताए है - १) मागधी २) अर्धमागधी ३) सम्भाविता ४) पृथुला

भरत के अनुसार अलग-अलग लयों में गाना उसे मागधी गीति कहते थे । मागधी में जो समय लगता है; उससे आधे समय में अगर गान पूरा हो जाता था तब वह 'अर्धमागधी' गीति कहलाती थी 'अर्ध्दरूपी निवृत्ति' । गुरु अक्षर समन्वित अर्थात दीर्घ अक्षरों का बहुत्व हो ऐसी गीति 'सम्भाविता' कहलाती है । तथा जिसमें अधिकांश पद हस्व अक्षरों से, लघु अक्षरों से उपयुक्त हो वह 'पृथला' गीति कहलाती थी ।

यह गीतियाँ बिना ध्रुवा-योग के होती है; मतलब की इनमें ध्रुवा का प्रयोग नहीं होता, यह केवल गांधर्व के लिए है ।[२६]

१.९.७ भरत कालीन ध्रुवा गीत :- नाट्यशास्त्र के ३२ वें अध्याय में ध्रुवा गीतों का सविस्तार वर्णन देखने को मिलता है । छन्द, वृत एवं पद की विशिष्ट रचना ध्रुवा-गीतों को बनाने में महत्त्वपूर्ण सिध्द होती है । ध्रुवा गीतों में स्वर, पद तथा ताल इन तीनों का मधुर मिलन है । वर्ण, अलंकार, लय, स्वर(यति), उपपाणि इन सब पारिवारिक अंगों के

पारस्परिक मधुर सम्बन्ध के कारण ये 'ध्रुवा' कहलाते थे । अभिनवगुप्त के कथन के अनुसार - नाट्य के विभिन्न अवसरों प्रसंगों पर इन नाट्य गीत द्वारा भावनात्मक एक्य स्थापित किया जाता था । इस वजह से ये नाट्यगीत 'ध्रुवा' कहलाते थे । भरत ने भी नाट्य-प्रयोग में ध्रुवा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है । इनके अनुसार नाटकों में ध्रुवाओं का प्रयोग यथा स्थान पर यथारस की उत्पत्ती के द्वारा नाटकों को उज्ज्वल बना देता था । स्वर, वर्ण, स्थान, लय आदि अंगों के साथ ध्रुवा गान होने से नाट्य को सफल बना देता था । ध्रुवागान विभ्भिन्न ग्रामरागों में होता था इसकी स्पष्टता नाट्यशास्त्र में पायी जाती है ।[२७]

१.१० मतंग कृत 'वृहदेशीय'

भरत के 'नाट्यशास्त्र' के पश्चात् मतंग मुनि द्वारा रचित 'वृहदेशीय' ग्रन्थ यह संगीत के लिए अति महत्त्व का ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ के समय को लेकर विद्वानों में मतभेद है । कोई हर्षवदन युग के (६०६ ई. - ६४७ ई.) बीच का मानते हैं । तो कोई सातवीं शताब्दी के प्रारंभ का मानते हैं। पी.वी. काणे के अनुसार ईसा ७५० वर्ष पूर्व का है । दक्षिण ग्रन्थ कृष्णामाचरि के अनुसार पाँचवीं शताब्दी का है । विद्वानों द्वारा इसका रचना काल ५ से ९ विं शताब्दी के बिच का माना जाता है । मतंग को मतंगमुनी के नाम से भी जाना जाता है; रामायण से महाभारत, कालिदास 'रघुवंश' इत्यादि तथा ६ से ८ विं शताब्दी के संगीत विचारकों में मतंग के नाम का उल्लेख पाया जाता है । मतंग ने भरत को गुरु माना है । तथा नारद मुनि के आज्ञा से ही मतंग ने वृहदेशीय की रचना की ।

यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से प्राप्त न होकर खंडित अवस्था में प्राप्य है । इसके पाठ भी अनेक स्थानों पर भ्रष्ट दशा में प्राप्त है । खंडित अवस्था

में होते हुवे भी संगीत के लिये यह एक महत्व-पूर्ण ग्रन्थ है । इसमें देसी संगीत के स्वरुप को लेकर सर्व प्रथम विस्तृत रूप में चर्चा की गई है । इस वजह से इसे 'वृहदेशी' के नाम से नामांकित किया गया है । मतंग को धातु की वंशी का किन्नरी वीणा का आविष्कारक भी मानते है । वीणा के तार पर परदे लगाने का काम सर्व प्रथम मतंग ने किया । वृहदेशीय के रागाध्याय, स्वराध्याय तथा प्रबन्धाध्याय प्राप्त है; बाकी के अधिकांस अध्याय महाराणा कुंभा को प्राप्त थे जिनका उल्लेख स्वयं निर्मित 'संगीत राज' में किया है । भरत द्वारा जिन संगीत विषयक वर्णन हुआ है इसके अतिरिक्त मतंग ने गान्धार ग्राम, द्वाद्वश स्वर मूर्च्छना पद्धति, चौरासी मूर्च्छना ताने, जातियों की मूर्च्छना तथा मार्ग एवं देशी संगीत इत्यादि का वर्णन किया है । मतंग ने ग्राम और मूर्च्छना शब्द की विस्तृत परिभाषा की है । सम्वादी स्वरों में ९ अथवा १३ श्रुतियों का अन्तर माना है । ग्राम रागों के वर्णन के साथ 'राग' शब्द का प्रयोग किया है । मतंग ने कहा है की उनके समय सात जाति प्रचलित थी, जिनमें से एक राग जाति भी थी । मतंग की राग जातियों के नाम इस प्रकार है १) टकी २) सावीरा ३) मालव-पंचम ४) षाडव ५) वट्टराग ६) हिंडोलकर ७) टक्क कोशिका। ये ही मतंग के मुख्य ग्रामराग भी कहालाते थे। जिनकी उत्पत्ति जातियों से मानी गई थी । मतंग के ही समय में जाति गायन के स्थान पर राग गायन का प्रारम्भ हो चूका था । उपरोक्त दर्शाए हुए राग ही मतंग के मुख्य राग कहे जा सकते हैं, जिनका जन्म जातियों से हुआ ।

इनके समय तक रागों की संख्या काफी बढ़ गई थी । वृहदेशी में राग शब्द का प्रयोग अत्यंत महत्व-पूर्ण बात है । जाति गायन के स्थान पर 'राग' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम इस ग्रन्थ में हुवा है । **"स्वर वर्ण विशेषण ध्वनि भेद देन वा पुन: ख्यते येन प: कश्चित् राग सम्त सताम"**

इससे पता चलता है की प्राचीन जाति गायन के लक्षण ही राग गायन में सम्मिलित हो गये । अर्थात जाति गायन के स्थान पर राग गायन का सूत्रपात हुआ ।[२८]

भरत के काल के जाति गायन का विकास होकर मतंग के समय में राग गायन के रूप में प्रचलित हो गया था । जातियों का विकसित रूप ही राग कहलाया ।

वैसे वेद के काल से देखने पर पता चलता है की सामवेद से स्वर, स्वर से ग्राम, ग्राम से मूर्च्छना तथा मूर्च्छना से जातियों की निर्मिती हुई। मतंग ने ग्राम राग तथा देसी राग की चर्चा की है । इस ग्रन्थ में 'राग' का सर्वप्रथम सुस्पष्ट उल्लेख किया गया है । मतंग ने ग्राम राग के साथ-साथ देशी रागों की भी चर्चा की है । इन्हों ने रागों का वर्गीकरण मुख्यत: दो विभागों में किया है (१) ग्राम राग अथवा भाषा राग (२) देशी राग ।[२९]

राग :- भरत ने नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत राग शब्द का उल्लेख कई जगहों पर किया है परन्तु राग की स्पष्ट व्याख्या मतंग ने वृहदेशीय में की है ।

"योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित:।

रंजको जनचित्तानां स च राग उदाहृत:"।।

अर्थात ऐसी ध्वनि जो स्वर वर्ण से विभूषित हो तथा जो जनचित्त का रंजन करे यह 'राग' है । मतंग के समय में रागों का विपुल संख्या में विकास हो चुका था।

१.१०.१ गीति

मतंग ने सात गीतियाँ मानी है । (१) शुध्दा(चोक्षा) (२) भिन्ना (३) गौड़ी (४) बेसरा (राग) (५) साधारणी (६) भाषा तथा (७) विभाषा । मतंग ने अन्य ग्रन्थकार दुर्गशक्ति, भरत, याष्टिक तथा कश्यप की गीतियों को भी दर्शाया है ।

मतंग ने उपरोक्त इन सात गीतियों के अन्तर्गत ग्राम रागों को बाँटा है । इन्होंने शुध्दा के अन्तर्गत ५ ग्राम राग, भिन्ना के अन्तर्गत ५ ग्राम राग, गौड़ी के अन्तर्गत ३ ग्राम राग, बेसरा के अन्तर्गत ८ ग्राम राग, साधारणी के अन्तर्गत ७ ग्राम रागों की संख्या नाम सहित मानी है तथा भाषा राग की संख्या १६ उसी प्रकार विभाषा राग १२ माने है । रागांग, भाषांग तथा क्रियांग इस प्रकार देशी रागों के तीन वर्ग मतंग ने माने हैं । मतंग को धातु की वंशी का तथा किन्नरी का आविष्कारक एवं किन्नरी वादक माना है । दामोदर गुप्त ने मतंग को शुषिर वाद्यों का निष्णात बताया है ।[३०]

जातियों के दस लक्षण मानकर भरत के नाट्यशास्त्र की सभी बातों का वर्णन 'वृहदेशीय' में पाया जाता है ।

निष्कर्ष

१) भरत ने राग स्वरुप का वर्णन नहीं किया है जबकि मतंग ने सर्व प्रथम राग शब्द की व्याख्या स्पष्ट की है ।

२) भरत ने गान्धार ग्राम को स्वर्ग स्थित बताया है तब इसके विपरीत मतंग ने गान्धार ग्राम का उल्लेख किया है ।

३) जाति गायन के स्थान पर राग गायन की नींव इस ग्रन्थ में डाली गई है।

४) इस ग्रन्थ में सबसे पहले राग तथा प्रबंधों का विस्तृत वर्णन भी दिखाई पड़ता है ।

ऐसे अनेक विषयों का निरूपण सबसे पहले हमें वृहदेशी में मिलता है । नाट्यशास्त्र तथा संगीत रत्नाकर की परम्परा समझने के लिये यह एक बिच का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।[३१]

१.११ संगीत रत्नाकर

पं. शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' का रचना काल लगभग तेरहवीं शताब्दी के आसपास का माना जाता है (१२१० से १२४७) । संगीत रत्नाकर यह कुल सात अध्यायों में बटा हुआ है। (१) स्वराध्याय (२) राग विवेकाध्याय (३) प्रकीर्णकाध्याय (४) प्रबन्धाध्याय (५) तालाध्याय (६) वाद्याध्याय (७) नर्तनाध्याय ।

यह संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।

पं. शारंगदेव के समय तक रागों की संख्या विस्तृत हो गई थी । इनमें से कुछ राग प्राचीन जातियों से संबंधित थे, तब कुछ राग स्थानीय शैलियों के प्रभाव में थे । तथा कुछ रागों में उपरोक्त दोनों विशेषताएँ थी।

पं. शारंगदेव ने अपने समय के रागों को दस भागों मे विभाजित किया है। (१) ग्रामराग (२) उपराग (३) राग (४) भाषा (५) विभाषा (६) अंतरभाषा (७) रागांग (८) भाषांग (९) क्रियांग (१०) उपांग |

१) **ग्रामराग** :- ग्रामरागों की उत्पत्ति ग्रामों से सबन्धित शुध्दा, भीन्ना, गौड़ी, वेसरा तथा साधारानी जैसी गीतियों से हुई है । षड्जग्राम तथा मध्यम ग्राम में इन गीतियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के राग बनते थे; ये ही ग्रामराग कहलाते थे। शारंगदेव के समय तक सात प्राचीन ग्राम रागों के साथ-साथ और २३ अन्य ग्राम राग प्रचार मे आ चुके थे । इनके नाम गीतियों के आधार पर होते थे ।

२) **उपराग** :- उपरागों की संज्ञा ऐसे रागों को दी जिनका समावेश ग्रामरागों में न था परन्तु राग के दस लक्षणों का इनमे बराबर पालन होता था ।

३) **राग** :- राग की उत्पत्ति भी ग्रामराग के समान जातियों से मानी गई है । परन्तु इनका विकास ग्रामरागों से पृथक हुआ था ।

४) **भाषा** :- भाषा यह राग गायन की प्रादेशिक शैलियाँ थी ।

५,६) भाषा के स्थानीय भेद विभाषा तथा अन्तरभाषा कहलाते थे । कुल ३० ग्रामरागों में से केवल १५ ग्रामरागों की भाषाआँ का प्रचलन रत्नाकर के समय में था ।

७) **रागांग** :- जिन रागों पर ग्रामरागों की छाया थी वे 'रागांग' राग कहलाते थे, जैसे - शंकराभरण, दीपक, भैरव ।

८) **भाषांग** :- जिन रागों पर प्रादेशिक गीतियों का प्रभाव था वे 'भाषांग' राग कहलाते थे, जैसे उस समय के छाया वेलावली, सावेरी ।

९) **क्रियांग** :- अभिनय प्रधान गीतों के अनुकूल भावप्रधान राग 'क्रियांग' राग कहलाते थे ।

१०) **उपांग** :- रागांग, भाषांग तथा क्रियांग इन तीनों के मिश्रीत रूप के रागों को 'उपांग' राग कहते थे ।

पं. शारंगदेव की इस राग वर्गीकरण की इस पद्धति के उपरांत राग वर्गीकरण की विभिन्न पद्धतियाँ कालान्तर अनुसार समय-समय पर प्रचलित रही ।[३२]

१.१२ राग तरंगिणी

पंडित लोचन कृत 'रागतरंगिणी' संगीत का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । यह मुसलमानों के काल का सर्वप्रथम ग्रन्थ है । पंडित लोचन यह मिथिला निवासी थे। इस ग्रन्थ का रचना काल लगभग १५ विं शताब्दी के आसपास (१६५० से १७२५ ई.) का माना जाता है । यह ग्रन्थ पाँच भागों में विभाजित है; इस ग्रन्थ में भागों को 'तरंग' की सज्ञा दी गयी है। लोचन ने प्राचीन राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट राग पद्धति को अपनाकर थाट राग पद्धति का बीजारोपण किया है । इस ग्रन्थ में निबद्ध गान तथा अनिबद्ध गान ऐसे गान के दो भेद बताये हैं । इन्होंने एक सप्तक के अन्तर्गत २२ श्रुतियाँ मानी है । तथा स्वरों में श्रुति विभाजन भी 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडज, मध्यम, पंचम:' के आधार पर ही किया है । इन्हों ने भी अपने स्वर की स्थापना अन्तिम श्रुतियों पर की है । लोचन का शुद्ध थाट; वर्त्तमान काफी थाट के समान माना है । इन्होंने [१] भैरवी [२] तोड़ी [३] गौरी [४] कर्णाट [५] केदार [६] ईमन [७] सारंग [८] मेघ [९] धनाश्री [१०] पूर्वी [११] मुखारी [१२] दीपक' यह १२ थाट मानकर अपने ७५ अन्य रागों का वर्गीकरण इनके अन्तर्गत किया है । रागों के गायन-समय के विषय में भी इस ग्रन्थ में वर्णन मिलता है। औडव, षाडव, तथा सम्पूर्ण जातिके विषय में भी वर्णन किया है ।[३३]

'प्रथम तरंग' के अन्तर्गत लोचन ने छ राग; भैरव, कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री तथा मेघ बताये है, जो हनुमत मत के अनुसार है । आगे चलकर इनके स्वरुप, लक्षण इत्यादि का वर्णन किया है ।

'द्वितीय तरंग' के अंतर्गत इन छः पुरुष रागों की ३० रागिनी (भार्या) बताई है । 'तृतीय तरंग' में रागोत्पत्ति, गीत तथा मिथिला के प्रचलित ३६ रागों का वर्णन किया है । 'चतुर्थ तरंग' में मिथिला में प्रसिद्ध संकीर्ण रागों के प्रकार तथा 'पंचम तरंग' में स्वर प्रकरण, राग संस्थिति इत्यादि का वर्णन मिलता है । इस ग्रन्थ में कुछ स्वरों के दो-दो नाम दिये है । जैसे शुद्ध मध्यम को अति तीव्रतम गान्धार भी माना है । जैसे ---

	श्रुति	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर
१	तीव्रा	-	तीव्र निषाद
२	कुमुध्दती	-	तीव्रतर निषाद / काकली
३	मन्दा	-	तीव्रतम निषाद
४	छन्दोवती	षड्ज	-
५	दयावती	-	-
६	रंजनी	-	कोमल ऋषभ
७	रक्तिका	ऋषभ	-

८	रौद्री	-	-
९	क्रोधा	गान्धार	-
१०	वज्रिका	-	तीव्रगान्धार
११	प्रसारिणी	-	तीव्रतरगान्धार
१२	प्रीती	-	तीव्रतम गान्धार
१३	मार्जनी	मध्यम	अति तीव्रतम गान्धार
१४	क्षिति	-	-
१५	रक्ता	-	तीव्रतर मध्यम
१६	सान्दिपनी	-	-
१७	आलापिनी	पंचम	-
१८	मदन्ती	-	-
१९	रोहिणी	-	कोमल धैवत
२०	रम्या	धैवत	-

२१	उग्रा	-	-
२२	क्षोभिणी	निषाद	-

लोचन का शुद्ध थाट वर्तमान काफी थाट के समान था ।[३४]

१.१३ राग वर्गीकरण

राग वर्गीकरण की परम्परा प्राचीन काल से आज तक जो चली आ रही है; इसे तीन कालों में बाँटा जा सकता है। (१) प्राचीन काल (२) मध्य काल (३) आधुनिक काल ।

१.१३.१ प्राचीन काल

प्राचीन काल के ग्रंथों में भरत कृत 'नाट्यशास्त्र', मतंग कृत 'वृहददेशी', नारद कृत नारदीय शिक्षा और 'संगीत मकरंद' मुख्य है ।

प्राचीन काल के अंतर्गत राग गायन के स्थान पर जाति गायन था। भरत ने नाट्यशास्त्र में षडज ग्राम की सात शुद्ध तथा मध्यम ग्राम की ग्यारह विकृत जातियाँ बताई है ।

षडज ग्राम की शुद्ध जातियों में - षाडजी, आर्षभी, धैवती, नैषादी तथा विकृत जातियों में षडजोदोच्यवती, षडजकैशिकी तथा षडजमध्या है।

मध्यम ग्राम की शुद्ध जातियों में - गांधारी, मध्यमा, पंचमी तथा विकृत जातियों में रक्तगांधारी गांधारोदीच्यवा, गांधारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, आँध्री, नंन्दयन्ती, कार्मारवी तथा कैशिकी। स्वर-वर्ण युक्त सुन्दर रचना को प्राचीन काल में जाति कहते थे । इसके दस

लक्षण माने हैं । जैसे - ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडत्व तथा औडत्व ।

मतंग के अनुसार विशिस्ट स्वर-वर्णों से विभूषित ऐसी ध्वनि जो जन साधारण के चित्त का रंजन करे उसे राग कहते है । नाट्यशास्त्र में 'राग' शब्द अनेक स्थानों पर आया है परन्तु 'राग' की स्पष्ट व्याख्या मतंग ने की है ।

मतंग ने रागों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है - १) ग्राम राग अथवा भाषा राग २) देशी राग। मतंग ने अपने रागों को शुद्ध, भिना, गौड़ी, वेसरा(राग), साधारणी, भाषा तथा विभाषा इन सप्त गीतियों में विभाजीत किया है । मतंग के समय में ही राग गायन का प्रचलन हो गया था । टकी, सावीरा, मालव पंचम, षाडव, वट्ट, हिन्डोलक, टक्क कैशिक यह सब मतंग के मुख्य राग थे । यह सब जातियों से उद्भवित थे।[३५]

१.१३.१.१ संगीत मकरंद

नारद कृत 'संगीत मकरंद' में षडज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गान्धार ग्राम; तीनों का वर्णन मिलता है । इस ग्रन्थ के अनुसार इनमें स्वरों के क्रमानुसार श्रुति स्थान निम्नवत है-

	स्वर	षड्ज	ऋषभ	गान्धार	मध्यम	पंचम	धैवत	निषाद
षड्ज ग्राम	श्रुति	४	३	२	४	४	३	२
मध्यम ग्राम	श्रुति	४	३	२	४	३	४	२

गान्धार ग्राम	श्रुति	३	२	४	३	३	३	४

गान्धारग्राम :

श्रुति संख्या	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
स्वर नाम	नि सा रे ग म प ध

इस ग्रन्थ में षड्ज तथा मध्यम ग्राम भूलोक में प्रचलित बताकर गंधार ग्राम को स्वर्ग लोक का बताया है । इन ग्रामों की सात-सात मूर्च्छनाएँ भी नाम सहित बताई है । इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम पुरुष राग , स्त्री एवं नपुंसक रागों की चर्चा की गई है । पुरुष राग नाम सहित २१ माने है । स्त्री राग नाम सहित २४ माने है । तथा १४ राग नाम सहित नपुंसक राग माने है । नारद ने इन रागों को निम्नवत रसोयुक्त बताया है -

राग	रसोयुक्त
पुरुष राग	रौद्र, अद्भुत एवं वीर
स्त्री राग	श्रृंगार, हास्य तथा करुण
नपुंसक	वीभत्स, भयानक और शान्त

नारद ने रागांग वर्गीकरण के अन्तर्गत तेरह राग बताये है ।

दुसरे एक राग-रागिनी वर्गीकरण के अन्तर्गत राग श्री, बसन्त, भैरव, पंचम, मेघ तथा नटनारायण इत्यादि रागों को दर्शाकर इनकी भार्याएँ नाम सहित दर्शाइ है । इस ग्रन्थ में वर्णित पुरुष, स्त्री राग इत्यादि के आधार पर आगे चलकर राग-रागिनी पद्धति निर्मित हुई। नारद ने रागों का गायन समय भी दर्शाया है । इस ग्रन्थ में ११ सम्पूर्ण, ११ षाडव तथा ८ औडव रागों के नाम तथा इनके ग्रह स्वर भी बताये हैं ।[३६]

१.१३.२ मध्यकाल

मध्यकाल में शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' के अन्तर्गत दस-विध-राग वर्गीकरण में उस समय के प्रचलित समस्त रागों को दस भागों में विभाजित करके रागवर्गीकरण किया है; जिसकी चर्चा हम पीछे कर चुके है ।

१.१३.२.१ शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग वर्गीकरण :-

प्राचीन काल से रागों को इन तीन वर्गों में विभाजित करने की प्रथा चली आ रही है । भरत, मतंग तथा शारंगदेव इत्यादि ग्रन्थकारों के ग्रथों में इनका उल्लेख देखने को मिलता है । शारंगदेव के दस-विध-राग वर्गीकरण के पश्चात शुद्ध, छायालग और संकीर्ण यह और एक वर्गीकरण पद्धति भी प्रचार में रही । जिसके अन्तर्गत रागों को तीन वर्गों में बाँटा गया ।

शुद्ध राग :- जिन रागों में शास्त्र के नियमों का पालन शुद्ध रूप से होता है, ऐसे रागों को शुद्ध राग कहते हैं । इन रागों में किसी अन्य रागों की छाया नहीं आती तथा ये स्वतंत्र राग होते है । जैसे वर्तमान राग कल्याण, मारवा इत्यादि।

छायालग राग :- जिन रागों में किसी अन्य किसी एक राग की छाया दृष्टीगोचर होती हो, वे राग छायालग राग कहलाते हैं । जैसे तिलक कामोद, परज आदि ।

संकीर्ण :- जिन रागों में एक से अधिक रागों की छाया आती थी ऐसे रागों को संकीर्ण राग कहते थे । इन रागों में एक से अधिक रागों का मिश्रण होने के कारण यह मिश्र राग भी कहलाते हैं ।

१.१३.२.२ राग-रागिनी वर्गीकरण :- विभन्न समय पर विभिन्न विद्वानों ने राग-रागिनी वर्गीकरण का उल्लेख किया है । नारद द्वारा रचित 'संगीत मकरन्द' में सर्वप्रथम इस वर्गीकरण पद्धति का उल्लेख मिलता है । इस ग्रन्थ में पुरुषराग, स्त्री राग तथा नपुंशक राग इस प्रकार तीन वर्गों में विभाजित करके इनके नाम भी बताए हैं । इन्होंने पुरुषराग २०, स्त्री राग २४ तथा १३ नपुंशक राग बताये हैं । इसके पश्चात मुख्य ६ राग श्री, बसंत, भैरव, पंचम, मेघ तथा नटनारायण मानकर इनकी ६-६ रागिनियाँ मानी है । जिसके आधार पर आगे चलकर राग-रागिनी पद्धति निर्मित हुई। इसके अलावा इन्होंने सम्पूर्ण, षाड्व तथा औड्व जाति के अनुसार भी रागों का तीन वर्गों में विभाजन किया है ।

राग-रागिनी वर्गीकरण में मुख्यत: चार मत प्रचलित थे - शिवमत, कृष्णमत, भरतमत तथा हनुमन्त मत। इस पद्धति के अन्तर्गत ६ पुरुष रागों की ६-६ या ५-५ रागिनियाँ, आठ-आठ पुत्र तथा आठ-आठ पुत्र-वधु मानी गई है ।

पंडित दामोदर कृत 'संगीत दर्पण' में इस प्रणाली के ३ मत बताये हैं जो इस प्रकार है-

शिवमत (सोमेश्वर मत)(मुख्य ६ पुरुष राग तथा इनकी ३६ रागिनियाँ)

	पुरुष राग	इनकी रागिनियाँ
१	श्री	मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी तथा पहाड़ी
२	बसंत	देशी, देवगिरी, वराटी, तोड़ी, ललिता, हिन्दोली
३	भैरव	भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैंधवी
४	पंचम	विभाषा, भूपाली, कर्नाटी, बडहंसिका, मालवी,पटमंजरी
५	मेघ	मल्लारी, सौरटी, सावेरी, कैशिकी, गान्धारी तथा हरश्रृंगारी
६	बृहनाट(नट्टनारायण)	कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी तथा नट्टहंबीरा

हनुमान मत (मुख्य ६ पुरुष राग तथा इनकी ३० रागिनियाँ)

	पुरुष राग	इनकी रागिनियाँ
१	भैरव	मध्यमादि, भैरवी, बंगाली, वराटी तथा सैंधवी
२	कौशिक	तोड़ी, खम्बावती, गौरी, गुणक्री, कुकुभा
३	हिन्दोल	वेलावली, रामकिरी, देशाख्य, पटमंजरी तथा ललिता
४	दीपक	केदारी, कानड़ा, देशी, कामोदी तथा नाटिका
५	श्री	बसन्ती, मालवी, मालश्री, धनासिका तथा आसावरी
६	मेघ	मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी तथा टंकी

संगीत दर्पण में उपरोक्त रागों के गायन समय की विस्तृत चर्चा की है । दर्पणकार ने जो राग कहे हैं; वे मूर्च्छना के आधार पर कहे हैं । मूर्च्छना कहेने के पश्चात इन रागों के स्वर कहने की आवश्यकता नहीं है। यूरोप में जैसे संगीत में प्राचीन मोडस (Modes) प्रकार था; वैसा ही प्रकार इन मूर्च्छनाओं का था। मूर्च्छना कहना मतलब उस राग का थाट कहने के बराबर था । दर्पणकार ने उपरोक्त राग-रागिनी के ग्रह, अंश तथा न्यास स्वर एवं वर्ज स्वर इत्यादि की भी चर्चा की है ।

मालश्रीर्जयतश्रीश्च धनाश्रीर्मारुका तथा ।

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादि नियमो नहि ।

नानादेशगतच्छाया देशीरागास्तु ते स्मृताः ।।९५।।

अर्थात जिन में श्रुति, जाति , स्वर, ग्राम वगैरे नियमित नहीं है तथा जिन में अलग-अलग देशों की छायाओं का समावेश होता है ऐसे रागों को देशी राग कहा है - जैसे मालश्री, धनाश्री, मारू इत्यादि राग ।[३७]

रागार्णव मत (मुख्य ६ पुरुष राग तथा इनकी ३० रागिनियाँ)

	पुरुष राग	इनकी रागिनियाँ
१	भैरव	बंगाली, गुणकिरी, मध्यमादि, बसंत, धनाश्री
२	पंचम	ललिता, गुर्जरी, देशी, बराडी, रामक्री
३	नट	नारायण, गांधार, सालग, केदार, कर्णाट
४	मल्लार	मेघमल्लारंका, मालवकौशिक, पटमन्जरी, आसावरी, मेघ
५	गौड़मालव	हिदोल, त्रिवण, गांधारी, गौरी, पटहंसिका
६	देश	भूपाली, कुडाली, कामोदी, नाटिका, बेलावली

इन तिन मतों के अतिरिक्त दुसरे दो मत भी मध्यकाल में प्रचार में थे ।

कृष्ण मत(कल्लिनाथ मत) (मुख्य ६ पुरुष राग तथा इनकी ३६ रागिनियाँ)

	पुरुष राग	इनकी रागिनियाँ
१	श्री	गौरी, कोलाहल, धवला, वरीराजो, मालकोंश , देवगंधार
२	बसंत	अन्धाली, गुणकली, पटमन्जरी, गौड़किरी, धांकी, देवसाग
३	भैरव	भैरवी, गुर्जरी, बिलावली, बिहाग, कर्नाट, कानडा
४	पंचम	त्रिवेणी, हस्तंतरेही, अहीरी, कोकभ, बेरारी, आसावरी
५	नट्टनारायण	त्रिबंकी, तिलंगी, पूर्वी, गांधारी, रामा, सिन्ध-मल्लारी

६	मेघ	बंगाली, मधुरा, कामोद, धनाश्री, देवतीर्थी, दिवाली

भरत मत (मुख्य ६ पुरुष राग तथा इनकी ३० रागिनियाँ)

	पुरुष राग	इनकी रागिनियाँ
१	भैरव	मधुमाधवी, ललिता, वरारी, भैरवी, बहुली
२	मालकोंश	गौरी, विद्यावती, तोड़ी, खम्बावती, कुकुभ
३	हिन्दोल	रामकली, मालवी, देवारी, आसावरी, केकी
४	दीपक	केदारी, गौरी, रुद्रावती, कामोद, गुर्जरी
५	श्री	सैंधवी, काफी, ठुमरी, विचित्रा, सोहनी
६	मेघ	मल्लारी, सारंग, देशी, रतिबल्लभा, कानरा

शिव मत तथा कल्लिनाथ मत के अनुसार इनके मुख्य ६ राग एक है, तथा इनकी रागिनियों की संख्या भी ६ है, किन्तु इनकी रागिनियों के नाम भिन्न है। उसी प्रकार भरत तथा हनुमन्मत के मुख्य ६ राग एक से है तथा इन प्रत्येक की रागिनियाँ भी ५-५ मानी गई है, परन्तु इनकी रागिनियों में भेद है।[३८]

भातखंडे जी का मानना है की जिन रागों की प्रकृति गंभीर है वे पुरुष राग है तथा जिन रागों की प्रकृति चंचल है ऐसे रागों को रागिनियाँ समझनी चाहिये ।

इस पारिवारिक वर्गीकरण की पद्धति काफी समय तक प्रचलित रही परन्तु उसके पीछे कोई सैद्धांतिक आधार न दिखाई देने के कारण तथा परिवार की रचनाओं में अनुवांशिक गुणों का साम्य का अभाव तथा उस समय के रागों का स्वरुप तथा वर्तमान रागों के स्वरुप में भिन्नता इत्यादि बातों को समझना कठिन होने के कारण इस पद्धति का अस्तित्व आज समाप्त हो गया है ।[३९]

१.१३.२.३ मेल राग वर्गीकरण

कर्नाटक पद्धति के ७२ मेलों के नाम :-

क्रमांक	मेल के नाम	स्वरश्रुति प्रयोग
१	कनकांगी	रे१ ग१ म१ ध१ नि१
२	रत्नांगी	रे१ ग१ म१ ध१ नि२
३	गानमूर्त्ति	रे१ ग१ म१ ध१ नि३
४	वनस्पति	रे१ ग१ म१ ध२ नि२
५	मानवती	रे१ ग१ म१ ध२ नि३
६	तानरूपी	रे२ ग२ म२ ध३ नि३
७	सेनावती	रे१ ग२ म१ ध१ नि१

८	हनुमत्तोड़ी	रे१ ग२ म१ ध१ नि२
९	धेनुक	रे१ ग२ म१ ध१ नि३
१०	नाटकप्रिय	रे१ ग२ म१ ध२ नि२
११	कोकिलप्रिय	रे१ ग२ म१ ध२ नि३
१२	रूपवती	रे१ ग२ म१ ध३ नि३
१३	गायकप्रिय	रे१ ग३ म१ ध१ नि१
१४	बकुलाभरण	रे१ ग३ म२ ध१ नि२
१५	मायामालवगौड़	रे१ ग३ म१ ध१ नि३
१६	चक्रवाक	रे२ ग३ म२ ध२ नि२
१७	सूर्यकान्त	रे१ ग३ म१ ध२ नि३
१८	हाटकांबरी	रे१ ग३ म१ ध३ नि३
१९	झन्कारध्वनि	रे२ ग२ म१ ध१ नि१
२०	नटभैरवी	रे२ ग२ म१ ध१ नि२

२१	किरवाणी	रे२ ग२ म१ ध१ नि३
२२	खरहरप्रिय	रे२ ग२ म१ ध२ नि२
२३	गौरीमनोहरी	रे२ ग२ म१ ध२ नि३
२४	वरुणप्रिय	रे२ ग२ म१ ध३ नि३
२५	माररंजनी	रे२ ग३ म१ ध१ नि१
२६	चारुकेशी	रे२ ग३ म१ ध१ नि२
२७	सरसांगी	रे२ ग३ म१ ध२ नि३
२८	हरिकांभोजी	रे२ ग३ म१ ध२ नि२
२९	धीरशंकराभरण	रे२ ग३ म१ ध२ नि३
३०	नागानंदिनी	रे२ ग३ म१ ध३ नि३
३१	यागप्रिय	रे३ ग३ म२ ध१ नि१
३२	रागवर्द्धनी	रे३ ग३ म१ ध१ नि२
३३	गांगेयभूषणी	रे३ ग३ म१ ध१ नि३

३४	वागधिश्वरी	रे३ ग३ म१ ध२ नि२
३५	शूलिनी	रे३ ग३ म१ ध२ नि३
३६	चलनाट	रे३ ग३ म२ ध१ नि३
३७	सालग	रे१ ग१ म२ ध१ नि१
३८	जलार्जव	रे१ ग१ म२ ध१ नि२
३९	झालकवराली	रे१ ग१ म२ ध१ नि३
४०	नवनीत	रे१ ग१ म२ ध२ नि२
४१	पावनी	रे१ ग१ म२ ध२ नि३
४२	रघुप्रिय	रे१ ग१ म२ ध३ नि३
४३	गवांभोधि	रे१ ग२ म२ ध१ नि२
४४	भवप्रिय	रे१ ग२ म२ ध१ नि२
४५	शुभपन्तुवराली	रे१ ग२ म२ ध१ नि३
४६	षडविधमार्गिणी	रे१ ग२ म२ ध२ नि२

४७	सुवर्णांगी	रे१ ग२ म२ ध२ नि३
४८	दिव्यमणि	रे१ ग२ म२ ध३ नि३
४९	धवलाम्बरी	रे१ ग३ म२ ध१ नि१
५०	नामनारायणी	रे१ ग३ म२ ध१ नि२
५१	कामवर्धनी	रे१ ग३ म२ ध१ नि३
५२	रामप्रिय	रे१ ग३ म२ ध२ नि२
५३	गमनश्रम	रे१ ग३ म२ ध२ नि३
५४	विश्वम्भारी	रे१ ग३ म२ ध३ नि३
५५	श्यामलांगी	रे२ ग२ म२ ध१ नि१
५६	षणमुखप्रिय	रे२ ग२ म२ ध१ नि२
५७	सिंहेन्द्रमध्यम	रे२ ग२ म२ ध१ नि३
५८	हेमवती	रे२ ग२ म२ ध२ नि२
५९	धर्मवती	रे२ ग२ म२ ध२ नि३

६०	नीतिमती	रे२ ग२ म१ ध३ नि३
६१	कान्तामणि	रे२ ग३ म२ ध१ नि१
६२	ऋषभप्रिय	रे२ ग३ म२ ध१ नि२
६३	लतांगी	रे२ ग३ म२ ध१ नि३
६४	वाचस्पति	रे२ ग३ म२ ध२ नि२
६५	मेचकल्याणी	रे२ ग३ म२ ध२ नि३
६६	चित्राम्बरी	रे२ ग३ म२ ध३ नि३
६७	सुचरित्र	रे३ ग३ म२ ध१ नि१
६८	ज्योतिस्वरूपिणी	रे३ ग३ म२ ध१ नि२
६९	धातुवर्धनी	रे३ ग३ म१ ध१ नि३
७०	नासिकाभूषणी	रे३ ग३ म२ ध२ नि२
७१	कोसल	रे३ ग३ म२ ध२ नि३
७२	रसिकप्रिय	रे३ ग३ म२ ध३ नि३

कर्नाटक पद्धति के ७२ मेलों के नाम ।[४०]

मध्ययुग मे ही राग वर्गीकरण की एक अन्य धारा प्रचलित थी जिसका उद्गम स्थल मुख्यत: दक्षिण भारत था। ई. १४ के विजयनगर साम्राज्य के विद्वान विद्यारण्य माधवाचार्य को इस वर्गीकरण का जन्मदाता मानते हैं । विद्यारण्य ने ५० रागों का वर्गीकरण १५ मेलों में किया है । इनके समय तक कुछ कारणों से ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि प्राचीन लक्षणों का अस्तित्व प्रचार से नाबूद सा हो गया था । इन्होंने उस समय के प्रचलित रागों को एकत्रित करके रागों में लगने वाले स्वरों के आधार पर रागों का स्वरुप का निर्धारण किया; अर्थात हर एक राग में प्रयुक्त होने वाले शुद्ध तथा विकृत स्वरों का निर्धारण करके जिन रागों में शुद्ध तथा विकृत स्वरों की समानता थी; उन रागों को एक समूह(वर्ग) में रखा तथा ऐसे वर्ग को 'मेल' की सज्ञा दि गई । मेल के नामकरण के लिए मेल से उद्भवित प्रसिद्ध राग का नाम मेल को दिया गया ।

रामामात्य, लोचन, पुण्डरीक विठ्ठल, सोमनाथ, व्यंकटमखी इत्यादि पण्डित इसी वर्गीकरण पद्धति के समर्थक रहे। उत्तर के पण्डितों ने 'मेल' को 'थाट' नाम से सम्बोधित किया। आरम्भ में १५ मेल माने गये थे । रामामात्य ने स्वरमेलकलानिधि ग्रंथ में २० मेलों में ६४ रागों को वर्गीकृत किया है । लोचन कृत 'राग तरंगिणी' ग्रन्थ में १२ मेलों से ७५ रागों को उद्भवित माने है । मेल को थाट या संस्थान भी कहा गया है । सोमनाथ ने मेल तथा लोचन ने थाट के लिए संस्थान शब्द का प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है । पुण्डरीक विठ्ठल ने मेलों की संख्या १९ स्वीकृत करके मेलों के अन्तर्गत ६३ राग रखे । तुलाजीराव भोंसले कृत 'संगीत सारामृत' में २१ मेलों के अन्तर्गत १०६ रागों का वर्गीकरण दर्शाया है । इन्होंने प्रथम मेल मुखारी के स्थान पर अपना प्रथम मेल 'श्री' माना है। श्री कंठ

कृत ‘रस कौमुदी’ ९ मेलों के अन्तर्गत २७ रागों को वर्गीकृत किया है । इन्होंने अपना प्रथम मेल ‘मालवगौड़’ माना है । पंडित भावभट्ट ने अनूप संगीत रत्नाकर में २० मेल दर्शाते हुए; मुखारी के स्थान पर इन्होंने अपना प्रथम मेल तोड़ी माना है ।

पं. व्यंकटमखी ने सप्तक के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जानेवाले १२ स्वर-स्थानों के आधार पर ७२ मेलों की रचना की है |

सप्तक के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के विभिन्न स्वरों के रूपों को एक-दुसरे के साथ मिलाकर शुद्ध मध्यम वाले ३६ तथा प्रति मध्यम(तीव्र मध्यम) के साथ ३६ मेल इस प्रकार (३६+३६= ७२) ७२ मेल की रचना की। यह ७२ मेल गणित आधारित थे। व्यवहार में ये प्रयोग की दृष्टी से अवैज्ञानिक होने के कारण इनमे से १९ मेलों को राग के लिये आवश्यक मानकर १९ मेलों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण किया है । इन १९ मेलों के नाम इस प्रकार है (१) मुखारी (२) सामवराली (३) भूपाली (४) हेजुज्जी (५) बसंतभैरवी (६) गौल (७) भैरवी (८) अहिरी (९) श्री (१०) काँभोजी (११) शंकराभरण (१२) सामन्त (१३) हेशाशी (देशाशी) (१४) नाट्ट (१५) शुद्धवराली (१६) पंतुवराली (१७) शुद्धरामक्री (१८) सिंहराव (१९) कल्याणी । इन्होंने ५५ जन्य राग बताये हैं । व्यंकटमखी ने ७ शुद्ध तथा ५ विकृत स्वर माने है । विकृत स्वरों में साधारण गंधार, अंतर गंधार, वराली मध्यम, कैशिक निषाद तथा काकली निषाद माने है ।

‘राग लक्षणम’ में मेलों की संख्या ७२ दिखाई है; जिसके अन्तर्गत प्रथम मेल कनकांगी माना गया है । जिसके ७२ मेल वर्त्तमान में प्रचार में है। जो व्यंकटमखी के मेलों से भिन्न है।

मध्य काल में प्रचलित राग वर्गीकरण की पद्धतियों में यह पद्धति व्यापक तथा सुविधाजनक थी । मेल-राग वर्गीकरण पद्धति प्रचलित तथा अप्रचलित सभी रागों को अपने अन्दर समा लेने में समर्थ थी । परन्तु उस काल में मेलों की संख्या को लेकर विद्वानों में एक मत न होने के कारण यह वर्गीकरण कुछ समय के बाद व्यवहार से जाता रहा ।[४१]

१.१३.३ आधुनीक काल

१.१३.३.१ रागांग पद्धति

कुछ प्रमुख रागों के ऐसे अंगभूत स्वर समूह होते हैं की जिनके कारण उस राग का अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व (व्यक्तित्व) प्रदर्शित होता रहता है । इस अंगभूत स्वर-समूह को 'रागांग' कहा गया है । रागों का यह अंग या स्वर समूह का प्रयोग अन्य रागों में करने से अनेक छायालग या संकीर्ण रागों का जन्म होता है; मतलब नये-नये राग-रूप सामने आते हैं । भारतीय राग संगीत में रागों के विकास में इन रागांगों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।

स्व. नारायण मोरेश्वर खरे जी ने रागों का अध्ययन कर के अनुभव के आधार पर पृथक ३० स्वर समुदाय चुने जिन्हे 'रागांग' कहा । इनके नाम इस प्रकार है। (१) बिलावल (२) कल्याण (३) भैरव (४) खमाज (५) भैरवी (६) काफी (७) आसावरी (८) मारवा (९) तोड़ी (१०) पूर्वी (११) कानडा (१२) मल्हार (१३) सारंग (१४) सोरठ (१५) नट (१६) विभास (१७) ललित (१८) बिहाग (१९) पिलू (२०) श्री (२१) बागेश्री (२२) भीमपलासी (२३) केदार (२४) शंकरा (२५) हिंडोल (२६) भूपाली (२७) कामोद (२८) भटियार (२९) दुर्गा (३०) आशा |

'रे प' यह मींडयुक्त स्वर संगती मल्हार वाचक मुख्य संगती मानी जाती है । इसी प्रकार 'प रे' की संगती कल्याण वाचक है । भैरव तथा कालिंगड़ा दोनों समप्रकृतिक राग होते हुवे भी अपनी-अपनी स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करनेवाली स्वरावली के कारण दोनों अलग दिखाई देते हैं। यह स्वतंत्रता इनके रागांगों से बनती है । भैरव का ख़ास रागांग (अंग) 'रे ध' कोमल तथा 'ग म रे सा' है । भैरव अंग से गाये जानेवाले रागों में इनका दर्शन होता हैं । तथा कालिंगड़ा अंग से गाये जानेवाले राग गौरी, परज इत्यादि हैं । राग कानड़ा का मुख्य अंग 'नि प' स्वर संगती तथा आन्दोलन युक्त कोमलतर ग तथा 'ग म रे सा' माने जाते हैं। इन सब रागांगों के कारण नायकी कानड़ा, सुहा कानड़ा, सुघराई, काफी- कानड़ा, बागेश्री- कानड़ा इत्यादि राग कानड़ा के प्रकार माने जाते हैं ।[४२]

१.१३.३.२ ठाट राग वर्गीकरण

कालान्तर अनुसार रागों के स्वरुप में परिवर्तन तथा परिवर्धन होने के कारण रागों के प्राचीन तथा वर्तमान स्वरुप में साम्यता नहीं दिखाई देती है । उस समय की प्रचलित सभी वर्गीकरण पद्धतियों में जनक-जन्य मेल पद्धति अधिक वैज्ञानिक (तर्क-संगत) लगने के कारण भातखंडेजीने पं. व्यंकटमखी के ७२ मेलों से १० प्रसिध्द थाट चुनकर वर्तमान तथा अप्रचलित रागों का वर्गीकरण इन थाटों के अन्तर्गत किया । साथ-साथ किसी थाट में भिन्न-भिन्न अंगों को लेकर राग बनते हैं; जैसे की काफी थाट में काफी अंग, कान्हड़ा अंग, मल्हार अंग, धनाश्री अंग यह भी समझाया । आधुनीक थाट शब्द 'मेल' शब्द का पर्यायवाची है । आज जो थाट-राग वर्गीकरण प्रचलित है इसका प्रचार-प्रसार का श्रेय पंडित भातखंडे जी को जाता है ।

भातखंडे जी ने दक्षिण मेल से चुने हुए १० थाटो के नाम ।

	दक्षिण मेल के नाम	**थाट नाम**
१	धीरशंकराभरण	बिलाबल
२	मेचकल्याणी	कल्याण
३	हरिकांभोजी	खमाज
४	खरहरप्रिया	काफी
५	नटभैरवी	आसावरी
६	मायामालवगौड़	भैरव
७	हनुमत्तोडी	भैरवी
८	कामवर्धिनी	पूर्वी
९	गमनप्रिया	मारवा
१०	शुभपन्तुवराली	तोड़ी

उत्तर हिन्दुस्तानी तथा दक्षिण हिन्दुस्तानी स्वरों का तुलनात्मक विवेचन :

	उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के स्वर	दक्षिण हिन्दुस्तानि संगीत के स्वर
१	षड्ज	षड्ज
२	कोमल ऋषभ	शुद्ध ऋषभ
३	शुद्ध या तीव्र ऋषभ	चतुश्रुती ऋषभ (शुद्ध गांधार)
४	कोमल गांधार	साधारण गांधार (षट्श्रुति ऋषभ)
५	शुद्ध या तीव्र गांधार	अन्तर गांधार
६	शुद्ध मध्यम	शुद्ध मध्यम
७	तीव्र मध्यम	प्रति मध्यम
८	पंचम	पंचम
९	कोमल धैवत	शुद्ध धैवत
१०	शुद्ध या तीव्र धैवत	चतुश्रुती धैवत (शुद्ध नि)

११	कोमल निषाद	कैशिक निषाद (षट्श्रुति धैवत)
१२	शुद्ध या तीव्र निषाद	काकलि निषाद

कर्नाटक मेलों में कभी-कभी एक स्वर की दो अवस्थाएँ देखि जाती है | उस स्थिति में दोनों में से एक की सज्ञा बदल जाती है |

पंडित भातखंडे जी ने थाट की परिभाषा इस प्रकार दि है --- क्रम बध्द सात स्वरों का वह समूह जिसमें अनेक रागों को उत्पन्न करने की क्षमता हो, जिसमें रंजकता के गुण की कोई आवश्यकता नहीं ऐसे क्रमानुसार सात स्वरों का आरोहात्मक स्वरुप थाट कहलाता है । भातखंडे जी ने व्यंकटमुखी के ही ७२ थाटों मे से दस थाटों को चुना और उनके नाम स्वर निम्नानुसार निर्धारित करके वर्तमान प्रचलित, अप्रचलित सभी रागों को इन थाटों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है ---

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दस थाटों के नाम तथा स्वर निर्धारण

	थाट नाम	**स्वर**
१	बिलाबल	सा रे ग म प ध नी
२	कल्याण	सा रे ग म॑ प ध नी
३	खमाज	सा रे ग म प ध नी॒
४	काफी	सा रे ग॒ म प ध नी॒
५	आसावरी	सा रे ग॒ म प ध॒ नी॒
६	भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नी
७	भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नी॒
८	पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नी
९	मारवा	सा रे॒ ग म॑ प ध नी
१०	तोड़ी	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नी

प्राचीन काल से लेकर मध्य काल के राग वर्गीकरण के संदर्भ में जटिलता अनुभवित होने के कारण जैसे की राग-रागिनी वर्गीकरण की तथा मेल वर्गीकरण की पौराणिकता तथा यान्त्रिकता एवं असमंजस्यता के कारण आज पंडित भातखंडे जी की थाट-राग वर्गीकरण पद्धति सर्वत्र प्रचलित है । आधुनीक काल में यह थाट-राग पद्धति अति उत्तम है । परन्तु इसमें कुछ सुधार की आवश्यकता भी है ।[४३]

१.१३.३.३ राग :- स्वर और अलंकारों (वर्णों) से सुसज्जित वह विशिष्ट एवं मधुर रचना जो मनुष्य के चित्त को आनंद प्रदान करे उसे राग कहते है ।

१.१३.३.४ रागों की जातियाँ :

रागों के आरोह-अवरोह में लगने वाले स्वरों की संख्या के आधार पर रागों की जाति निर्धारित की जाती है ।

स्वर संख्या अनुसार रागों के मुख्य तीन भेद हैं ।

१. सम्पूर्ण - ७ स्वर वाले राग

२. षाडव - ६ स्वर वाले राग

३. औड़व - ५ स्वर वाले राग

स्वरों के आधार पर उपरोक्त जातियों की तीन-तीन उपजातियाँ और बना दी गई है।

१. संपूर्ण	२. षाडव	३. औड़व
संपूर्ण - संपूर्ण	षाडव - संपूर्ण	औड़व - संपूर्ण
संपूर्ण - षाडव	षाडव - षाडव	औड़व - षाडव
संपूर्ण - औड़व	षाडव - औड़व	औड़व - औड़व

उपरोक्त जातियों में से शोधार्थी द्वारा अपने शोध-प्रबंध के लिये मुख्यत: "उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित औड़व-औड़व, औड़व-षाडव तथा षाडव-षाडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन" के लिए को चुना है।

१.१४ प्रचलित राग : जो राग प्रचार में है, ऐसे रागों को प्रचलित राग कहते हैं । इन रागों की श्रेणी में यमन, मारवा, बिहाग, जयजयवंती, भूपाली, सारंग, बागेश्री इत्यादि राग आते हैं, तथा ज्यादातर इन्हीं रागों का गायन सुनने को मिलता है।

१.१५ अप्रकाशित तथा अप्रचलित राग : कुछ राग ऐसे हैं जो प्रचार में नहीं के बराबर हैं, ऐसे रागों को अप्रकाशित राग कहेंगे | कुछ ऐसे राग हैं जो ज्यादातर सुनने को नहीं मिलते, कम सुनाई देते हैं ऐसे राग अप्रचलित राग की श्रेणी में आते हैं | इन रागों की बंदिशें सरलता से प्राप्त नहीं होती है | इन्हें अछोप राग भी कहते है | कई बार इन रागों में दो से चार रागों का मिश्रित रूप भी देखने को मिलता है |[४४]

१.१६ नवनिर्मित राग :

कालानुसार समय-समय पर वाग्येयकार, विद्वानों, तथा पंडितों, गायक-वादकों द्वारा नए रागों की रचना होती रही है | ऐसे रागों की रचना ज्यादातर कीसी राग की जाति में परिवर्तन करने से, स्वर-संगतीयों में परिवर्तन करने से, ग्रह, अंश तथा न्यास के स्वरों में परिवर्तन द्वारा, वादी संवादी बदलने से, अल्पत्व-बहुत्व में फरक करने से उसी प्रकार रागों के स्वरों में परिवर्तन (बदलने से मतलब की विकृत, शुद्ध) करने से, रागों के चलन में फरक करने से, रागों के मिश्रण द्वारा, कर्णाटक संगीत से लिए गए रागों द्वारा इत्यादि सभी बातों से तथा परिवर्तन स्वरुप; नए रागों की उत्पत्ति संभव होती है ।[४५]

संदर्भ – प्रथम अध्याय

१. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. १ से ७ |

२. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. १ से ८ |

३. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. १२ से १३ |

४. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. १० |

५. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. १९ |

६. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. ४८ से ५१ |

७. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. ५३ से ५४ |

८. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. ५६ से ५८ |

९. परांजपे, श. श्री. (१९७२). संगीत बोध. (प्रथम संस्करण.). मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल. पृ. १२ से १४ |
१०. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. १८|
११. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ५० से ५५ |
१२. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ५७, ५९, ६८, ६९, १०४ |
१३. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ७६ से ७७ |
१४. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. १०० |
१५. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. १०४ से १०७ |
१६. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च

एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ११२ से ११६ |

१७. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. १२१ से १२५ |

१८. शास्त्री शुक्ल, बा. (२००९). नाट्यशास्त्र. (भाग - ४). (पुनर्मुद्रण.). बाबूलाल शुक्ल, शास्त्री. चोखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी. पृ. १०|

१९. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (द्वितीय संस्करण.). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. ५३ |

२०. शास्त्री शुक्ल, बा. (२००९). नाट्यशास्त्र. (भाग - ४). (पुनर्मुद्रण.). बाबूलाल शुक्ल शास्त्री. चोखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी. पृ. १७|

२१. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ३४१ से ३४३ |

२२. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ३५२,३५८ और ३५९ |

२३. ठाकुर, ज. सिं. (१९९४). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). सम्पादिका - प्रेमलता शर्मा. प्रकाशक - संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ. ३६४ |

२४. परांजपे, श. श्री. (१९७२). संगीत बोध. (प्रथम संस्करण.). मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल. पृ. ५५ |
२५. शास्त्री शुक्ल, बा. (२००९). नाट्यशास्त्र. (भाग - ४). (पुनर्मुद्रण.). बाबूलाल शुक्ल शास्त्री. चोखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी. पृ. २८ से ३२ |
२६. शास्त्री शुक्ल, बा. (२००९). नाट्यशास्त्र. (भाग - ४). (पुनर्मुद्रण.). बाबूलाल शुक्ल शास्त्री. चोखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी. पृ. ७९ से ८० |
२७. परांजपे, श. श्री. (१९६९). भारतीय संगीत का इतिहास. (प्रथम संस्करण.). चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. पृ. ३६१, ३६२, ३६८ |
२८. जोशी, उ. (१९६९, जनवरी २६). भारतीय संगीत का इतिहास. (द्वितीय संस्करण.). मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश. पृ. १६४ |
२९. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (द्वितीय संस्करण.). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. ८० |
३०. सिंह, ला. की. (२०१४). भारतीय संगीत ग्रन्थ. कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली. पृ. ७६, ७७ |
३१. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (द्वितीय संस्करण.). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. ८२ |
३२. परांजपे, श. श्री. (१९७२). संगीत बोध. (प्रथम संस्करण.). मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल. पृ. ६२ से ६४ |
३३. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (द्वितीय संस्करण.). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. १३७ से १३८ |

३४. सिंह, ला. की. (२०१४). भारतीय संगीत ग्रन्थ. कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली. पृ. २७३ से २७४ और २८० से २८१ |
३५. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (द्वितीय संस्करण). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. २५५ से २५६ |
३६. सिंह, ला. की. (२०१४). भारतीय संगीत ग्रन्थ. कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली. पृ. ५१ से ५५ |
३७. ठक्कर, रतनसी लीलाधर. (१९१०). संगीत दर्पण. मे गायन उत्तेजक मंडळी, मुंबई. पृ. ७२, ७५, ७६, ७९, ११२ |
३८. श्रीवास्तव, ह. (१९९८). राग परिचय. (भाग ४). (दसम आवृत्ति.). संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद. पृ. १९४ से १९५ |
३९. परांजपे, श. श्री. (१९७२). संगीत बोध. (प्रथम संस्करण.). मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल. पृ. ६४ |
४०. वसन्त. (१९६२). राग-कोष. (प्रथम संस्करण.). सम्पादक लक्ष्मीनारायण गर्ग. संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र. पृ. ८० से ८१ |
४१. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण. (द्वितीय संस्करण.). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. २६१ से २६४ |
४२. परांजपे, श. श्री. (१९७२). संगीत बोध. (प्रथम संस्करण.). मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल. पृ. ६७ से ६८ |
४३. शर्मा, स्वतन्त्र. (२०१४). भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण (द्वितीय संस्करण.). अनुभव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद. पृ. २७२ से २७३ |
४४. माथुर, सु. (२००६). हिन्दुस्तानी संगीत की राग-सम्पदा. (प्रथम संस्करण). संजय प्रकाशन, दिल्ली. पृ. १३ |

४५. टेंकशे, श. अ. (१८९५). नव-राग-निर्मिती. अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल, मुंबई. पृ. ९ से १२ |